© Maulana Azad National Urdu University, Hyderabad

Course : Master of Arts

Edition : 2021

प्रकाशक	:	रजिस्ट्रार, मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी, हैदराबाद
प्रकाशन	:	2021
मूल्य	:	170/-
प्रतियां	:	1000
कम्पोजिंग	:	एस पी हाई-टेक प्रिंटर्स प्राइवेट. लिमिटेड. हैदराबाद
डिजाइनिंग	:	डॉ. मो. अकमल ख़ान, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय,
एंड सटिंग		मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू युनिवर्सिटी, हैदराबाद

आधुनिक हिंदी गद्य

(Modern Hindi Prose)

For M.A. 1st Semester

On behalf of the Registrar, Published by:

Directorate of Distance Education

Maulana Azad National Urdu University

Gachibowli, Hyderabad-500032 (TS), Bharat

Director: dir.dde@manuu.edu.in *Publication:* ddepublication@manuu.edu.in

Phone number: 040-23008314 Website: manuu.edu.in

इकाई 1 : आधुनिक हिंदी गद्य : उद्भव और विकास

रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 मूल पाठ : आधुनिक हिंदी गद्य : उद्भव और विकास
1.3.1 आधुनिक हिंदी गद्य के उद्भव की पृष्ठभूमि
1.3.2 आधुनिक हिंदी गद्य का आरंभिक विकास
1.3.3 आधुनिक हिंदी गद्य का विधागत विकास
1.3.3.1 नाटक
1.3.3.2 उपन्यास
1.3.3.3 कहानी
1.3.3.4 निबंध
1.4 पाठ सार
1.5 पाठ की उपलब्धियाँ
1.6 शब्द संपदा
1.7 परीक्षार्थ प्रश्न
1.8 पठनीय पुस्तकें

1.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के इतिहास का अनुशीलन करने से यह तथ्य सामने आता है कि गद्य की उपस्थिति आदिकालीन साहित्य में विशुद्ध गद्य और चंपू विधा के रूप में रही है। चंपू यानी गद्य-पद्य मिश्रित विधा। भक्तिकाल में भी गद्य का स्वरूप अविकसित था। इस समय गद्य लेखन की दो प्रवृत्तियाँ थी। एक काव्यात्मक गद्य लेखन जिसमें तुक का मिलना अनिवार्य था और दूसरा तुकरहित गद्य लेखन। आदिकाल से लेकर रीतिकाल तक पद्य की तुलना में प्राचीन गद्य साहित्य की उपस्थिति बहुत कम है। आधुनिक काल में हिंदी गद्य की रचनाओं का विपुल भंडार है। इससे पहले के समय में भी अपभ्रंश साहित्य के अंतर्गत अपभ्रंश मिश्रित देशी भाषा (राजस्थानी, मैथिली और ब्रजभाषा) में गद्य की रचनाएँ प्राप्त हुई हैं। इससे प्राचीन संस्कृत साहित्य में भी गद्य साहित्य उपलब्ध रहा है। उस समय 'गद्य' शब्द प्रचलित नहीं था पर 'गद्य साहित्य' को काव्य की कसौटी कहा जाता था। संस्कृत में 'साहित्य' के लिए 'काव्य' शब्द का प्रयोग होता था, जिसमें गद्य और पद्य दोनों विधाओं की रचनाएँ शामिल मानी जाती थीं। बाद में 'काव्य' शब्द केवल 'पद्य' के लिए रूढ़ हो गया। "संस्कृत में अनेक रूपों- नाटक, कथा, आख्यायिका- आदि की अत्यंत समृद्ध एवं सुविकसित परंपरा थी। अतः हिंदी के प्रारंभिक युगों में गद्य का विकास न होने के पीछे 'संस्कृत के आदर्शों का पालन' करना नहीं अपितु उन्हें त्याग देना ही कारण है। वस्तुतः हिंदी से पूर्व अपभ्रंश में ही संस्कृत की गद्य-परंपरा बहिष्कृत एवं लुप्त हो चुकी थी।" (गणपतिचंद्र

गुप्त)। अभिप्राय यह है कि संस्कृत में उपलब्ध गद्य साहित्य को उनके परवर्ती काल के साहित्यकारों ने पद्यबद्ध किया। संस्कृत गद्य से प्रेरणा लेकर उसे पद्य में परिवर्तित करने का काम अपभ्रंश के कवियों ने पहले किया। आधुनिक काल में पूर्व युगों की राग-प्रेम और कल्पनाशीलता का स्थान तार्किकता, बौद्धिकता और यथार्थता ने ले रखा है। इसीसे इस काल में गद्य को अबाधित विस्तार भूमि प्राप्त हो रही है। इस काल के गद्य लेखन को लक्षित करते हुए, आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसे गद्यकाल की संज्ञा से विभूषित किया। प्राचीन भाषाओं में गद्य साहित्य की कम उपस्थिति का एक कारण यह भी हो सकता है कि इस ओर पर्याप्त खोज अभी भी बाकी है।

1.2 उद्देश्य

प्रिय छात्रों इस इकाई में आप हिंदी गद्य के उद्भव और विकास की विभिन्न स्थितियों का अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

- आधुनिक हिंदी गद्य के उद्भव की अवस्थाओं से अवगत होंगे।
- आधुनिक हिंदी गद्य के विकास के कारक तत्वों से परिचित हो सकेंगे।
- आधुनिक हिंदी गद्य की विकास यात्रा को समझ सकेंगे।
- आधुनिक हिंदी गद्य के विधागत विकास को जान सकेंगे।

1.3 मूल पाठ : आधुनिक हिंदी गद्य : उद्भव और विकास

1.3.1 आधुनिक हिंदी गद्य के उद्भव की पृष्ठभूमि

साहित्य की किसी भी विधा के उद्भव और विकास का संबंध उसकी भाषा के उद्भव और विकास के साथ जुड़ा हुआ होता है। इसलिए आधुनिक हिंदी गद्य के उद्भव की पृष्ठभूमि भी हिंदी भाषा के क्रमिक विकास से जुड़ी हुई है। इसका अध्ययन आपने हिंदी साहित्य का इतिहास इकाई के अंतर्गत किया है। आधुनिक हिंदी गद्य के अस्तित्व में आने से पूर्व अपभ्रंश मिश्रित देशी भाषाओं में गद्य साहित्य की झलक मिलती है। हिंदी साहित्य के अध्ययन की दृष्टि से राजस्थानी भाषा का साहित्य ही सबसे प्राचीन माना जाता है।

राजस्थान में लेखन की दो शैलियाँ प्रचलित थी- 'डिंगल' और 'पिंगल'। अपभ्रंश मिश्रित पुरानी राजस्थानी भाषा का साहित्य 'डिंगल' शैली में रचित साहित्य के रूप में जाना जाता है। ब्रजभाषा मिश्रित राजस्थानी भाषा के साहित्य को 'पिंगल' शैली की रचना कहा गया। हिंदी के आदिकाल में रोडा कृत 'राउलवेल' का उल्लेख मिलता है जो शिलांकित कृति है। इसमें हिंदी की सात बोलियों के शब्द हैं पर इसकी प्रधान भाषा राजस्थानी है। पाठ के रूप में इसे बंबई के प्रिंस ऑफ़ वेल्स संग्रहालय से प्राप्त कर प्रकाशित किया गया है। दामोदर शर्मा कृत 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण' 12वीं शताब्दी की अवधी भाषा की रचना है। इसकी भाषा अवधी है। इस पर अपभ्रंश का प्रभाव दृष्टिगोचर न हो इसके लिए इन अपभ्रंश प्रभावित शब्दों का संस्कृत रूपांतरण करके प्रयोग किया गया है। इसमें तत्सम शब्दों का प्रयोग अधिक दिखाई देता है। ज्योतिरीश्वर ठाकुर कृत 'वर्णरत्नाकर' 14वीं शताब्दी की मैथिली भाषा की रचना है। इसे बंगाल एशियाटिक

सोसाइटी ने प्रकाशित कराया। इसका संपादन डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी और पं. बबुआ मिश्र ने किया था। आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिंदी साहित्य के प्राचीन गद्य के रूप में ब्रजभाषा गद्य को मान्यता देते हैं। ब्रजभाषा हिंदी क्षेत्र की साहित्यिक काव्यभाषा के रूप में मान्य थी।

इन देशी भाषाओं का पद्य साहित्य प्रवाहमान रहा परंतु इनके गद्य साहित्य के स्वरूप विकास की गति अत्यंत मंद रही। ब्रजभाषा और ब्रजभाषा मिश्रित खड़ीबोली हिंदी में काव्य ग्रंथों एवं संस्कृत ग्रंथों की उपलब्ध टीकाओं की भाषा भी सहज ग्राह्य नहीं थीं। इन 'अनगढ़ और असंबद्ध' भाषाओं की दुरूहता गद्य में अरुचि उत्पन्न करने वाली थी। मूल साहित्य इन टीकाओं से कहीं अधिक सहज, ग्राह्य और रुचिकर लगती थी। इस प्रकार ब्रजभाषा में पद्य का भंडार द्रुत गति से बढ़ रहा था पर उसके समक्ष उस भाषा का गद्य साहित्य बहुत न्यून था। गद्य की भाषा के रूप में खड़ी बोली हिंदी के निर्विरोध चयन में; गद्य के क्षेत्र में इस पूर्ववर्ती भाषिक शैथिल्य का बड़ा योगदान रहा। इसे स्पष्ट करते हुए आचार्य शुक्ल कहते हैं, "गद्य का भी विकास यदि होता आता तो विक्रम की इस शताब्दी के आरंभ में भाषा-संबंधिनी बड़ी विषम समस्या उपस्थित होती। जिस धड़ाके के साथ गद्य के लिये खड़ी बोली ले ली गई उस धड़ाके के साथ न ली जा सकती। कुछ समय सोच-विचार और वाद-विवाद में जाता और कुछ समय तक दो प्रकार के गद्य की धाराएँ साथ-साथ दौड़ लगाती। भाषा विप्लव नहीं संघटित हुआ और खड़ी बोली, जो कभी अलग और कभी ब्रजभाषा के गोद में दिखाई पड़ जाती थी, धीरे-धीरे व्यवहार की शिष्ट भाषा होकर गद्य के नए मैदान में दौड़ पड़ी।" अकबर और जहाँगीर के समय से ही खड़ी बोली हिंदी का प्रयोग शिष्ट भाषा के रूप में हो रहा था। अकबर के समय में ही कवि गंग ने 'चंद छंद बरनन की महिमा' नामक गद्य-ग्रंथ लिखा। यह आधुनिक हिंदी गद्य लेखन का प्रथम प्रयास माना जाता है।

रामप्रसाद निरंजनी कृत 'भाषा योगवशिष्ठ' (1741 ई.) में आधुनिक हिंदी गद्य का अधिक परिष्कृत स्वरूप सामने आया। यह हिंदी गद्य की प्रथम प्रौढ़ रचना है। रविषेणाचार्य कृत जैन पद्मपुराण का भाषानुवाद (1766ई.) दौलतराम ने किया। इस ग्रंथ की भाषा योगवशिष्ठ के समान परिष्कृत नहीं थी। यह उर्दू-फारसी के प्रभाव से बिलकुल मुक्त थी। इस ग्रंथ की महत्ता इसमें व्यवहृत हिंदी के स्वाभाविक स्वरूप से है।

बोध प्रश्न

1. संस्कृत में साहित्य के लिए कौन-सा शब्द प्रचलित था?
2. आधुनिक काल से पूर्व गद्य लेखन की प्रवृत्ति क्या थी?
3. हिंदी गद्य लेखन के लिए खड़ी बोली का निर्विरोध चयन क्यों हुआ?

1.3.2 आधुनिक हिंदी गद्य का आरंभिक विकास

19वीं शताब्दी में भारत में अंग्रेजी राज की स्थापना के बाद भारत की चतुर्दिक परिस्थितियाँ बदली। राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक गतिविधियों में आए विविध परिवर्तनों ने भी गद्य विधा के प्रचार और भाषा के परिष्कार में योग दिया। भारत में

अंग्रेजों के आने से पूर्व ही हिंदी गद्य के प्रसार का कार्य आरंभ हो चुका था। अंग्रेजों के आने से पहले दक्षिण भारत में मिशनरियों का दल ईसाई धर्म के प्रचार में लगा हुआ था। इस प्रचार कार्य में हिंदी भाषा का उपयोग उन्होंने बहुलता से किया।

विकास के कारक तत्व

मुगलों के शासनकाल में दिल्ली की खड़ी बोली शिष्ट व्यवहार की भाषा बन गई। औरंगजेब के समय में दरबारों में फारसी मिश्रित खड़ी बोली यानी 'रेख्ता' में शायरी की जाने लगी। दिल्ली पर बाहरी आक्रमणकारियों के आक्रमणों से सामान्य जनता और शासक, पराजय की स्थिति में दर-बदर की ठोकर खाने को मजबूर होते थे। मुगलों का यह विध्वंश भी खड़ी बोली हिंदी के विकास में सहायक रहा। आश्रय और जीविकोपार्जन के साधन की तलाश में लोग अपने घर और शहर को छोड़ कर दूसरी जगह जाते। लोगों के इस स्थानांतरण के साथ उनकी भाषा और संस्कृति भी स्थानांतरित होती थी। नए जगह से कुछ प्रभाव ग्रहण करना और कुछ प्रभाव ग्रहण कराना; मनुष्य का सामान्य स्वभाव है। बड़े शहरों के बाजार की व्यावहारिक भाषा खड़ी बोली थी। जब पराजित नगर के व्यापारी अपना शहर छोड़कर दूसरी जगह गए तो इनकी भाषा भी इनके साथ गई। इस प्रकार खड़ी बोली का भारत की सभी क्षेत्रीय भाषाओँ से संपर्क हुआ। 16वीं शताब्दी में दक्खिनी भाषा जब भारत की भाषा के रूप में सर्वमान्य हुई तब इस भाषा में गद्य लेखन की प्रवृत्ति भी विकसित हुई। मौलिक और अनूदित पुस्तकों के रूप में गद्य की रचना की गई। इस भाषा का दूसरा नाम 'रेख्ता' है।

रीतिकाल के अंत तक भारत में अंग्रेजों का साम्राज्य कायम हो चुका था। 1758ई. में डैनिश मिशन कलकत्ता आया था। 1793ई. में एक मिशन के साथ 'कैरे' आए। नए बंगाल के निर्माण एवं बंगला-गद्य की नींव डालने में इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा। 'अलेक्जेंडर डफ' भारत में ईसाई धर्म-प्रचार का काम अंग्रेजी भाषा के माध्यम से करना चाहता था। इस काम के लिए भारत में कई अंग्रेजी स्कूल-कॉलेज खुल गए। पर धर्म प्रचार में वह असफल रहा। अब अंग्रेजों को महसूस हुआ कि भारत में अपनी धाक ज़माने के लिए भारतीयता सीखनी पड़ेगी। यहाँ के लोगों के भाव और विचार से परिचित होना होगा। इसके लिए उन्हें यहाँ की भाषा को सीखना आवश्यक लगा। भाषा को सीखने के लिए उन्हें गद्य की आवश्यकता हुई। वे हिंदी गद्य के विकास की ओर प्रयत्नरत हुए। हिंदी भाषा में उन लोगों ने 'इंग्लैंड के इतिहास' का अनुवाद कराया। 1803ई. में जॉन गिलक्राइस्ट (हिंदी-उर्दू अध्यापक, फोर्ट विलियम कॉलेज) ने अध्ययन-अध्यापन की सुविधा के लिए भारत देश की भाषा में गद्य की पुस्तकों को लिखवाने का प्रबंध किया। इस व्यवस्था में उन्होंने उर्दू से सर्वथा अलग एक स्वतंत्र भाषा के रूप में हिंदी का अस्तित्व स्वीकार किया। 'फोर्ट विलियम कॉलेज' की स्थापना कलकत्ता में 1800ई. में हुई। ईसाई मिशनरी ने अपने धर्म प्रचार के क्रम में अपने धर्म ग्रंथों का समग्र हिंदी अनुवाद कराकर वितरित किया। हिंदी गद्य के विकास के कारक तत्वों के रूप में प्रेस, शिक्षण संस्थानों, व्यक्तियों एवं पत्र-पत्रिकाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

आधुनिक हिंदी गद्य के विकास में व्यक्तियों, संस्थाओं और पत्र-पत्रिकाओं का योगदान

मुंशी सदासुखलाल नियाज (1746ई.-1824ई.)

ये दिल्ली निवासी और मुख्य रूप से उर्दू-फारसी के लेखक थे। इस भाषा में इन्होंने कई पुस्तकें और शायरी लिखीं। इन्होंने विष्णुपुराण के उपदेशात्मक प्रसंगों को आधार बनाकर एक पुस्तक हिंदी में लिखी। यह पुस्तक पूरी नहीं मिली है। इसमें प्रयुक्त हिंदी गद्य का भाषिक स्वरूप कुछ दूर तक 'योगवशिष्ठ' की भाषा से साम्य रखता है और उर्दू के प्रभाव से पूर्ण मुक्त है। इसमें प्रयुक्त खड़ी बोली में तत्सम शब्दों की बहुलता है। यह संस्कृत मिश्रित हिंदी ही मुसलमान लोगों के लिए 'भाखा' थी। उस समय के हिंदी गद्य कथावाचक, साधु-संत और पंडित जन इस भाषा का प्रयोग करते थे जो हिंदुओं की बोलचाल की शिष्ट भाषा थी। आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं, "मुंशीजी ने यह गद्य न तो किसी अंग्रेज़ अधिकारी की प्रेरणा से और न किसी दिए हुए नमूने पर लिखा।" इनकी भाषा गंभीर-संयत और परिमार्जित खड़ी बोली है।

इंशाअल्ला खाँ (मृत्यु 1800 ई.)

'उदयभानचरित' या 'रानी केतकी की कहानी' 1798ई. से 1803ई. के बीच की रचना है। आचार्य शुक्ल के अनुसार इसमें घरेलू ठेठ भाषा का प्रयोग बहुत जगह दिखाई देता है और वर्णन भी भारतीय है। विशुद्ध हिंदवी भाषा में गद्य रचना करने के उद्देश्य से उन्होंने यह कहानी लिखी। विशुद्ध हिंदवी से उनका मतलब था हिंदी भाषा का ऐसा रूप जो बाहर की बोली (अरबी-फारसी, तुर्की), गँवारू बोली (ब्रजभाषा, अवधी) और भाखा से मुक्त हो। उनकी भाषा में 'फारसी के ढंग का वाक्य विन्यास कहीं कहीं आ ही गया है; पर बहुत कम। जैसे- "सिर झुकाकर नाक रगड़ता हूँ अपने बनानेवाले के सामने जिसने हम सबको बनाया।" रंगीन और चुलबुली भाषा द्वारा अपना लेखकीय कौशल दिखाना चाहते थे। आरंभकाल के चारों लेखकों में इंशा की भाषा सबसे चटकीली, मुहावरेदार और चलती है।' (रामचंद्र शुक्ल)।

लल्लूलालजी (1763ई.-1825ई.)

ये आगरा निवासी गुजराती ब्राह्मण थे। उर्दू, ब्रजभाषा और खड़ी बोली- इन तीनों ही भाषाओं में इन्होंने रचना किया है। इनकी कृति 'प्रेमसागर' (1803ई.) जॉन गिलक्राइस्ट के गद्य लेखन की परियोजना का हिस्सा था। इस ग्रंथ में भागवत के दशम स्कंध की कथा वर्णित है। इनकी भाषा गंग की खड़ी बोली के नजदीक है। गद्य का लहजा काव्यात्मक है और लंबे वाक्य प्रयुक्त हुए हैं। इसमें मुहावरे कम प्रयुक्त हुए हैं। इनकी खड़ी बोली पर ब्रजभाषा का प्रभाव अधिक है। 'राजनीति' (1812ई.) ब्रजभाषा गद्य की पुस्तक है। यह पद्यमय हितोपदेश का गद्यानुवाद है। बिहारी सतसई पर इनकी टीका 'लाल चंद्रिका' भी बहुत प्रसिद्ध रही। आगरे में संस्कृत प्रेस की स्थापना इन्होंने की। सुरति मिश्र द्वारा अनूदित संस्कृत ग्रंथ 'बैतालपचीसी' का खड़ी बोली में अनुवाद लल्लूलाल ने किया।

सदल मिश्र

ये बिहार निवासी थे। प्रेमसागर की भांति ही इनका 'नासिकेतोपाख्यान' जॉन गिलक्राइस्ट के गद्य लेखन की परियोजना का हिस्सा था। इन्होंने इसमें खड़ी बोली हिंदी के व्यावहारिक रूप का प्रयोग किया है। कम मात्रा में ही सही पर ब्रजभाषा और पूरबी बोली के शब्द इनकी भाषा में दिखाई देते हैं।

निष्कर्षतः सदल मिश्र और मुंशी सदासुखलाल के गद्य की भाषा खड़ी बोली अधिक उपयुक्त और व्यावहारिक प्रतीत होती है। इन चार लेखकों में सबसे पहले मुंशी सदासुखलाल ही गद्य लेखन की ओर उन्मुख हुए; इसलिए इन्हें आधुनिक हिंदी गद्य का प्रवर्तक माना जाता है। यह समय है 1803ई.-1824ई. में राजस्थानी पद्य 'गोरा बादल री बात' का खड़ी बोली में गद्यानुवाद किया गया।

1803ई. से 1858ई. के बीच गद्य विधा का कोई उत्कृष्ट ग्रंथ नहीं मिलता है। गद्य के इस उपलब्ध रूप का व्यवहार ईसाई मिशनरियों ने किया। ईसाई धर्म प्रचारक भारत की जनता के मध्य अपने मत का प्रचार करना चाहते थे। सदासुख और लल्लूलाल द्वारा प्रयुक्त हिंदी में ही इन लोगों ने अपने धर्मग्रंथों का अनुवाद किया। यह भाषा उर्दू के प्रभाव से बिलकुल मुक्त हिंदी थी। साधारण जनता की भाषा यही थी। ईसाइयों ने अपने धर्म का प्रचार कार्य लगातार जारी रखा। बाइबिल का अनुवाद विलियम कैरे ने किया। ये लोग निरंतर अपनी पुस्तकों को निकालते और वितरित करते। धर्म प्रचार के बाद इन लोगों ने शिक्षा अभियान शुरू किया। भारत की धर्म आधारित शिक्षा व्यवस्था की जगह आधुनिक शिक्षा पद्धति पर आधारित स्कूल-कॉलेज खोले गए। यह आधुनिक शिक्षा पद्धति अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली पर आधारित थी। इसमें मातृभाषा की जगह अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाया गया। शिक्षण संस्थानों के खुलने से पाठ्य पुस्तकों की आवश्यकता हुई। इन पाठ्य पुस्तकों के निर्माण कार्य के साथ-साथ आधुनिक हिंदी गद्य निरंतर अपने विकसित स्वरूप को प्राप्त होता रहा।

ईसाई मत के प्रचार में ईसाई उपदेशक हिंदू धर्म के बाह्याडंबर पर निरंतर प्रहार कर रहे थे। इससे आधुनिक शिक्षा पद्धति के योग्यताधारी लोगों में अपने धर्म के प्रति अरुचि और अश्रद्धा उत्पन्न हो रही थी। हिंदू धर्म के मूल स्वरूप ब्रह्मज्ञान और वेदांत को पुनर्जीवित करने के उद्देश्य से राजराममोहन राय ने ब्रह्म समाज (1828ई.) की स्थापना की। उन्होंने वेदांत सूत्र के भाष्य का हिंदी अनुवाद कर प्रकाशित करवाया। 'बंगदूत' नामक संवाद पत्र निकाला। छापाखाना की व्यवस्था से सुविधा बढ़ी। कानपुर के पं जुगलकिशोर ने 'उदंत मार्तंड' (1826ई.) समाचार पत्र निकाला। यह हिंदी का पहला समाचार पत्र है। हिंदू कॉलेज (1817ई.) की स्थापना अंग्रेजी शिक्षा के लिए की गई। उस समय शिक्षा देशी भाषा में नहीं दी जाती थी। शिक्षा के लिए संस्कृत या अरबी पर ध्यान जाता था। मेकाले ने अंग्रेजी शिक्षा का समर्थन किया और इन भाषाओं का विरोध किया। 7 मार्च 1835 ई. को अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार का प्रस्ताव पास हो गया। कार्यालय की भाषा फारसी ही रही। इससे सामान्य जनता की मुश्किल बढ़ी क्योंकि वे इससे अपरिचित थे। इसलिए 29 जुलाई 1836ई. को यह घोषणा हुई कि कार्यालय के कामकाज की भाषा में बोली हिंदी ही हो, अक्षर नागरी की जगह फारसी भी हो सकती है। यह व्यवस्था मुस्लिमों के

प्रयत्न से एक वर्ष बाद ही बदल दी गई। कार्यालय की भाषा पुनः उर्दू हो गई। 'उर्दू भाषा' खड़ी बोली का अरबी-फारसीमय रूप था जो अदालतों में विशेष रूप से प्रयुक्त किया जाता था। अब देश की भाषा के रूप में इसका पठन-पाठन अनिवार्य कर दिया गया था। इससे नई शिक्षित पीढ़ी भाखा विमुख हो रही थी। धर्म भाव ने ही कुछ लोगों को इससे जोड़ रखा था। 1845ई. में राजा शिवप्रसाद ने 'बनारस अखबार' निकलवाया। इसकी भाषा उर्दू थी और अक्षर नागरी। इसके पाँच वर्ष बाद काशी से ही दूसरा पत्र 'सुधाकर' कई मित्रों के सहयोग से निकाला गया। इसकी भाषा हिंदी थी जो पहले से सुधरी हुई भी थी पर यह पत्र कुछ दिन चला नहीं। दो वर्ष बाद 1852ई. में आगरे के मुंशी सदासुखलाल के प्रबंध और संपादन में 'बुद्धिप्रकाश' पत्र निकला। यह कुछ वर्षों तक चला। इसकी भाषा परिष्कृत हिंदी थी। हिंदी-उर्दू भाषा विवाद में सर सैयद अहमद द्वारा हिंदी को दबाने की कोशिश का प्रत्युत्तर देने में राजा लक्ष्मण सिंह और शिवप्रसाद सितारेहिंद समर्थ रूप से डटे रहे। इनके प्रयत्नों के फ़लस्वरूप ही हिंदी शिक्षा चलती रही। हिंदी-उर्दू विवाद भारतेंदु युग तक चला। राजा लक्ष्मण सिंह ने अपने मित्रों के साथ हिंदी गद्य के विस्तार के लिए पाठ्य पुस्तक लिखने का काम किया। इन्होंने आगरे से 'प्रजा हितैषी' पत्र 1861ई. में निकाला और 1862ई. में 'अभिज्ञान शाकुंतलम' का अनुवाद किया। इसकी भाषा की सरलता से पुनः भाषिक चेतना सजग हुई। लखनऊ का 'अवध अखबार' उर्दू भाषा का पत्र था। इसमें हिंदी के लेखों को भी जगह मिलता था। 'लोकमित्र' ईसाई धर्म के प्रचार का पत्र था पर इसकी भाषा हिंदी थी। पंजाब के क्षेत्र में बाबू नवीनचंद्र हिंदी के उन्नयन के कार्य में लगे थे। उन्होंने 'ज्ञान प्रदायिनी' पत्रिका निकाला। इस प्रकार 1826ई. से 1867ई. के बीच प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं को हिंदी पत्रकारिता का प्रथम उत्थान कहा गया। हिंदी पत्रकारिता का दूसरा उत्थान भारतेंदु युग को माना गया। इसका समय 1868ई. से 1885ई. तक माना जाता है। इस काल में हिंदी भाषा और साहित्य को समृद्ध करने के उद्देश्य से प्रकाशित होनेवाली पत्र-पत्रिकाओं की सूची निम्नवत है- 'कविवचनसुधा' (1868ई.), 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' (1873ई.) (भारतेंदु हरिश्चंद्र), 'आनंद कादंबिनी' (1881ई., बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन), 'हिंदी प्रदीप' (1877ई., बालकृष्ण भट्ट), 'ब्राह्मण' (1883ई., प्रतापनारायण मिश्र), 'सदादर्श' (लाला श्रीनिवासदास), 'बिहार बंधु' (1871ई., केशवराम भट्ट), भारतेंदु (1883ई., गोस्वामी राधाचारण) इत्यादि। 1886ई. से 1900ई. की सीमा को पत्रकारिता का तृतीय उत्थान कहा गया। महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा संपादित 'सरस्वती' पत्रिका इसी उत्थान में आती है। इस उत्थान की अन्य पत्र-पत्रिकाएँ हैं- नागरी नीरद, साहित्य सुधानिधि, विद्याविनोद, नागरी प्रचारिणी पत्रिका इत्यादि। हिंदी को जन-जन तक पहुंचाने में इन पत्र-पत्रिकाओं का योगदान रहा। स्वामी दयानंद ने आर्यसमाज (1875ई.) की स्थापना की। इनकी कृति 'सत्यार्थ प्रकाश' (1875ई.) हिंदी भाषा में है। वेदों का भाष्य भी इन्होंने संस्कृत के साथ हिंदी में भी लिखा। पं. श्रद्धाराम फिल्लौरी कृत 'भाग्यवती' सुप्रसिद्ध सामाजिक उपन्यास है।

बोध प्रश्न

4. आधुनिक हिंदी गद्य के विकास के कारक तत्वों पर प्रकाश डालें।

5. आधुनिक हिंदी गद्य के विकास में फोर्ट विलियम कॉलेज की क्या भूमिका रही?

6. क्या अंग्रेजी शिक्षा पद्धति से 'भाखा' और 'भारतीयता' प्रभावित हो रही थी?

1.3.3 आधुनिक काल में हिंदी गद्य का विधागत विकास

अब तक हमने देखा कि हिंदी गद्य का एक ढाँचा खड़ा करने में हिंदी प्रेमियों ने सफलता पा ली थी। पत्रकारिता का इसमें बड़ा योगदान रहा। यह अभी मात्र ढाँचा था जिसे मूर्त स्वरूप में ढालने के लिए और तराशा जाना आवश्यक था। यह कार्य भारतेंदु युग में किया गया। भारतेंदु ने गद्य में प्रयुक्त होने वाली हिंदी भाषा का स्वरूप अपने गद्य लेखन से स्थिर किया। यह पुनर्जागरण काल था। इस युग में सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप वैचारिकता भी प्रभावित हो रही थी। नई पीढ़ी अब धार्मिक आक्रांताओं की पीढ़ी नहीं थी। वे देश-दुनिया की समझ रखनेवाले आधुनिक इंसान थे। जिनकी बौद्धिक पिपासा को शांत करने में केवल कविता सक्षम नहीं थी। कविता अब भी संस्कार की सजगता का माध्यम थी। पर समाज में बदलाव और यथार्थ की समीक्षा से जुड़े वैचारिक लेखन के लिए सशक्त विधा के रूप में गद्य को ही चुना गया। आधुनिक हिंदी गद्य को विभिन्न दिशाओं में मोड़ने का श्रेय भी भारतेंदु हरिश्चंद्र को ही प्राप्त है। अतः इन्हें आधुनिक काल का प्रवर्तक मानना उचित है। भारतेंदु के समय में साहित्यिक गतिविधियों का केंद्र काशी था। उस समय इस युग की केंद्रीय विधा 'नाटक' थी। इसके साथ ही इस काल में हिंदी साहित्य की अन्य मुख्य गद्य विधाओं का भी उदय हुआ, जैसे- उपन्यास, निबंध, आलोचना इत्यादि। जीवनी और यात्रा वृत्तांत जैसी गौण विधाओं में भी रचनाएँ की गईं। साहित्येतर ज्ञान संबंधी विधाओं में भी गद्य लेखन हुआ, जैसे- राजनीति, समाजशास्त्र, विज्ञान, धर्म-दर्शन, चिकित्सा इत्यादि। साहित्यिक पुस्तकों का अनुवाद भी किया गया। भारतेंदु युग के बाद उत्तरोत्तर हिंदी गद्य की विधाओं का विकास होता गया।

1.3.3.1 नाटक

आधुनिक हिंदी गद्य विधाओं के रूप में सबसे पहले 'नाटक' विधा का अस्तित्व सामने आया। नाटक दृश्य काव्य है। इसमें दर्शक देखकर आनंद की प्राप्ति करते हैं। अतः मंचन के लिए उपयुक्त होना, इसकी अनिवार्यता है। साहित्य की सभी विधाओं में नाटक सबसे अधिक सामाजिक है। जब किसी नाटक को रंगमंच पर प्रस्तुत किया जाता है तब विभिन्न किरदारों को निभानेवाले विभिन्न लोग जो निहायत ही अलग परिवेशों से संबंधित रहते हैं, उस नाट्य-मंचन के दौरान उनमें एकता की चेतना दिखाई देती है। उनका उद्देश्य एक रहता है-'नाटक का सफल मंचन'। मानवों में इस एकत्व भाव की प्रेरणा ही भारतेंदु युग के पुनर्जागरण की भावभूमि है। आपसी सहयोग की भावना, एकत्व की अनुभूति और सामाजिक जागरण के उद्देश्य से नाट्य विधा का प्रवर्तन हुआ। भारतेंदु कहते हैं, 'इस महामंत्र का जप करो, जो हिंदुस्तान में रहे, चाहे किसी रंग, किसी जाति का क्यों न हो, वह हिंदू है।' भारतेंदु स्वयं नाट्य मंचन में भाग लेते थे। उन्होंने संस्कृत, बँगला और अंग्रेजी भाषा के नाटकों का अनुवाद किया। उनके द्वारा रचित नाटक हैं- वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, चंद्रवली, विषस्य विषमौषधम, भारत दुर्दशा, नीलदेवी, अंधेर

नगरी (1881ई.), प्रेम-जोगिनी, सती प्रताप। इनमें सती प्रताप नाटक अधूरा रह गया था जिसे राधाकृष्ण दास ने पूरा किया। उनके द्वारा अनूदित नाटक हैं- विद्यासुंदर, पाखंड विडंबन, कर्पूर मंजरी, मुद्राराक्षस, भारत जननी इत्यादि। अपने नाटकों में भारतेन्दु ने जीवन के सभी विषयों को समाविष्ट करने की चेष्टा की। वर्तमान विषयों पर केंद्रित उनका नाटक 'भारत दुर्दशा' है। इसमें मूल विषय समाज की दशा और दिशा जैसे गंभीर विषय को अत्यंत मनोरंजक शैली में लेखक ने प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक विषयों के साथ प्रेम और पाखंड को भी उन्होंने अपने नाटकों में छुआ है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार 'नाटकों की रचना शैली में उन्होंने मध्यम मार्ग का अवलंबन किया। न तो बंगला के नाटकों की तरह प्राचीन भारतीय शैली को एकबारगी छोड़ वे अंग्रेजी नाटकों की नकल पर चले और न प्राचीन नाट्यशास्त्र की जटिलता में अपने को फंसाया।' बालकृष्ण भट्ट, लाला श्रीनिवासदास, बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन ने भी इस विधा में अपना योगदान दिया। नाट्य विधा का विकास छायावाद युग में जयशंकर प्रसाद के नाटकों में देखने को मिला। इनकी नाट्य कृतियाँ हैं- राज्यश्री (1915ई.), अजातशत्रु (1922ई.), स्कंदगुप्त (1928ई.), चंद्रगुप्त मौर्य (1931ई.), ध्रुवस्वामिनी (1933ई.)। "हिंदी नाटक में प्रसाद के आने से गुणात्मक परिवर्तन होता है। सीधी-सपाट भाषा की तुलना में लाक्षणिक और अधिक अर्थ-संपन्न भाषा का प्रयोग होने लगता है, जिसे उन्होंने छायावादी कविता के तत्वावधान में विकसित किया। इसी के समानांतर देवता-राक्षस ध्रुवों से हट कर अधिक मानवीय चरित्र बनते हैं जिनमें अच्छाई और बुराई तत्व एक साथ हैं, और इसलिए उनमें संघर्ष और अंतर्द्वंद्व बराबर चलता रहता है। फिर अब तक के मनोरंजन, उपदेश या लालित्य भाव की तुलना में... प्रसाद के नाटक बराबर एक बौद्धिक विचारधारा का आधार लेते हैं।" प्रसाद के सानिध्य में नाट्य विधा ने परिपक्वता प्राप्त की। प्रसाद के बाद लक्ष्मीनारायण लाल और मोहन राकेश का इस क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान रहा। इनके प्रसिद्ध नाटक क्रमशः हैं- 'मादा कैक्टस' (1959ई.), 'आषाढ़ का एक दिन' (1958ई.)। 'आषाढ़ का एक दिन' के अतिरिक्त मोहन राकेश के दो और नाटक हैं- 'लहरों के राजहंस' और 'आधे अधूरे'। रामस्वरुप चतुर्वेदी के अनुसार लाल का नाट्य लेखन वैविध्यपूर्ण रहा है... लाल के एक दर्जन से अधिक पूर्णकालिक नाटक हैं जिनमें कई प्रकार के कथानक और नाट्य विधान हैं। वे शब्द के सच्चे अर्थ में नाटक हैं, मंच पर बार-बार उनका अभिनय हुआ है। रंगमंच के साथ क्रिया-प्रतिक्रिया में लक्ष्मीनारायण लाल ने बराबर सीखा है और नाट्य लेखन में वे अपने ढंग से बराबर प्रयोग करते रहे हैं।

'मादा कैक्टस' लक्ष्मीनारायण लाल का बहुचर्चित और बहुअभिनीत नाटक है। प्रकाशन के पूर्व यह अभिनीत हुआ है और प्रथम तथा द्वितीय संस्करण में नाट्य अनुभव का लाभ उठाते हुए रचनाकार ने उसमें आवश्यक परिवर्तन किए हैं। नाटक में कला और प्रणय के अंतर्विरोध की समस्या अंकित हुई है। कलाकार का प्रेम सामान्य स्नेह-संबंधों से अलग है क्योंकि उसका प्रधान दायित्व तो अपने रचनात्मक व्यक्तित्व तथा अपनी कला के प्रति है। एक ओर प्रणय और दूसरी ओर अपने व्यक्तित्व तथा अपनी कला के बीच चित्रकार अरविंद किस प्रकार से अपनी पत्नी सुजाता और मित्र तथा शिष्य आनंदा (दूसरे संस्करण में मीनाक्षी) के जीवन को निस्सार तथा निरर्थक बना देता है, इसका सूक्ष्म अंकन 'मादा कैक्टस' में हुआ है।

रंग-विधान की दृष्टि से 'मादा कैक्टस' आधुनिक नाट्य पद्धतियों के अनुकूल है। नीलाम की डुगडुगी के साथ बेबी का मंच पर प्रवेश नाटक की प्रतीक योजना को एक गति देता है, जो अंत तक अवरुद्ध रहती है। अंत में मीनाक्षी के फेफड़ों के एक्स-रे चित्र को जिस ढंग से प्रस्तुत किया गया है वह काफी प्रभावपूर्ण है। पहले अंक में अनाथालय के बच्चों का प्रवेश अरविंद के व्यक्तित्व पर टिप्पणी करता है। अधुनातन नाट्य विधान में घटनाओं के स्थान पर संवेदन को अधिक महत्व दिया गया है, पर कुछ नाटक ऐसे हैं जो घटनापूर्ण होते हुए भी प्रकृति में नए हैं, जैसे जॉन आस्बर्न का 'लुक बैक इन एंगर'। लाल का 'मादा कैक्टस' कुछ इसी प्रकार का है।

रंगकर्मियों द्वारा नाट्य-मंचन से नाटक विधा को नवीन स्फूर्ति मिली और इसका स्वरूप अधिक निखरा। प्रसाद के नाटकों को भी इस समय के अंतर्गत नए स्वरूप में मंचित किया गया जिसे लोगों ने पसंद किया और सराहा। जिन आयोजकों ने नाट्य मंचन को प्रोत्साहित करने में अपना योगदान दिया उनमें कुछ उल्लेखनीय नाम इस प्रकार हैं- श्यामानंद जालान, ब.व.कारंत, प्रतिभा अग्रवाल, सत्यदेव दुबे, लक्ष्मीनारायण लाल, सत्यव्रत सिन्हा और हबीव तनवीर इत्यादि। नाट्य मंचन को अनुकूल वातावरण मिलने का श्रेय नेमिचंद्र जैन एवं सुरेश अवस्थी के द्वारा की गई नाट्य आलोचना को जाता है। इस क्षेत्र में 'नटरंग' पत्रिका का योगदान अतुलनीय रहा। इस पत्रिका का संपादन नेमिचंद्र जैन करते थे। प्रसादोत्तर नाटक में गुणात्मक परिवर्तन 'भुवनेश्वर' लाते हैं। इनका नाट्य संकलन 'कारवां' बहुत प्रसिद्ध रहा। नाट्य विधा में भुवनेश्वर ने जो प्रयोग किए उन्हें 'विपिन कुमार अग्रवाल' ने आगे बढ़ाया है। समकालीन मध्य वर्ग के जीवन पर केंद्रित इनके तीन नाट्य संकलन हैं- 'तीन अपाहिज', 'लोटन' और 'खोए हुए आदमी की खोज'। रंग कर्म हेतु उपयुक्तता की दृष्टि से सुरेंद्र वर्मा भी ख्यातिलब्ध नाटककार रहे हैं। इनके प्रसिद्ध नाटक हैं- द्रौपदी, सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक इत्यादि। सभी नाटक रंगमंच पर प्रदर्शित नहीं किए जा सकते। एकांकी जो पाश्चात्य की एक पूर्व प्रचलित विधा है उसे रंगमंच पर प्रदर्शन के उद्देश्य से हिंदी साहित्य का अंग बना लिया गया। एकांकी शब्द से ही स्पष्ट है 'एक अंक का'। इसमें मूल कथा और संवेदना भी एक ही रहती है। रामकुमार वर्मा कृत 'बादल की मृत्यु' हिंदी का पहला एकांकी है। संदेश प्रसार और प्रदर्शन की दृष्टि से ही नुक्कड़ नाटक खेले जाते हैं। रेडियो नाटक की रचना भी बहुत साहित्यकारों ने किया है। साहित्य में रेडियो नाटक के कई रूप प्रचलित हैं।

1.3.3.2 उपन्यास

हिंदी का पहला मौलिक उपन्यास 'परीक्षा गुरु' (1882ई.) को माना जाता है। इस उपन्यास से ही हिंदी साहित्य में सामाजिक उपन्यासों की परंपरा का प्रवर्तन होता है। भारतेंदु युग में ही उपन्यास विधा का उदय हुआ। इस युग के उपन्यासों का स्वरूप ऐतिहासिक, तिलस्मी, जासूसी, प्रेमपरक और सामाजिक रहा है। उपन्यासकर किशोरीलाल गोस्वामी ने मानवीय प्रेम के विविध रूपों की व्यंजना अपने उपन्यासों में किया है। इस युग में बंगला, अंग्रेजी, मराठी और उर्दू भाषा के मौलिक उपन्यासों का अनुवाद भी किया गया। द्विवेदी युग में पहले की औपन्यासिक प्रवृत्ति का विकास हुआ। इस युग में सामाजिक उपन्यास कई लेखक लिख

रहे थे। यह लेखन समाज सुधार की भावना से प्रेरित था। प्रेमचंद के आरंभिक उपन्यास (प्रेमा, रूठी रानी : 1907ई.), सेवासदन : 1918ई.) इसी युग में प्रकाशित हुए। उपन्यास जगत को प्रेमचंद ने एक नई दिशा दी। अपने उपन्यासों के माध्यम से उन्होंने विशेष रूप से जीवन की अंदरूनी समस्याओं और चरित्रों को उभारा। इस दृष्टि से उनके अंतिम उपन्यास 'गोदान' (1936ई.) को आज भी कृषक जीवन के महाकाव्य के नाम से जाना जाता है। यह वर्णनात्मक प्रविधि से लिखा गया उपन्यास है। हिंदी साहित्य में इसके बाद फणीश्वरनाथ रेणु का उपन्यास 'मैला आँचल' (1954ई.) मील का पत्थर साबित हुआ। यह आंचलिक उपन्यासों की श्रेणी में आता है। इसमें स्थूल वर्णन की जगह प्रधान रूप से विभिन्न विरोधी तत्वों का समावेश किया गया है। यह उपन्यास लेखन की अधुनातन विधि है। इसकी सफलता कथा प्रवाह में मार्मिक क्षणों की उत्पादकता में निहित है।

रामस्वरुप चतुर्वेदी के अनुसार 'ग्रामीण जीवन में व्याप्त हास्य और करुणा को, उदाहरण के लिए, एक साथ उकेरा गया है बालदेव और बामनदास के चरित्रों में। वैसे ही क्रूरता और सहानुभूति की मनोवृत्तियाँ संश्लिष्ट हुई हैं। सन 1942 के स्वतंत्रता-आंदोलन का उदात्त त्याग और विद्रूप भी इसी तरह एक-दूसरे से लगे लिपटे हैं, कहीं कुछ भी अकेला और निरपेक्ष नहीं है। इतनी सारी राजनैतिक उथल-पुथल के बीच डॉक्टर और कमला की कोमल व्यक्तिगत प्रणय-गाथा है। गाँव में गरीबी, रोग और रूढ़ियाँ हैं, पर इन सबके साथ और बावजूद, एक नए जीवन की आशा पल रही है। आँचल मैला भले हो गया हो पर उसकी ममता में कमी नहीं है। उपन्यास का यह नया विधान उसके भाषा प्रयोग से जुड़ा हुआ है।... 'मैला आँचल' का भाषा भी सीधे इतिवृत्तपरक न होकर अपनेआप में सर्जनात्मक है। यहाँ वर्णन और बिंबों की भाषा में अनुपात ठीक से सधा है, इसलिए ब्यौरों का चित्रण जितना कुशल है संवेदन का अंकन उतना ही सूक्ष्म।' मैला आँचल की यह लेखन शैली गोदान की शैली से एकदम अलग है। कथा साहित्य के अंतर्गत कहानी और उपन्यास विधा के अध्ययन के क्रम में युगों का विभाजन प्रेमचंद को केंद्र में रखकर किया गया है। प्रेमचंदोत्तर उपन्यासकारों में 'जैनेन्द्र और अज्ञेय फ्रायड के मनोविज्ञान से प्रभावित हैं, तो इलाचंद्र जोशी उसके मनोविश्लेषण से।' इनमें 'अपनी विशिष्ट विचारधारा और सर्जनात्मक शक्ति के कारण यशपाल ने अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व बना लिया है। 'गोदान' में प्रेमचंद ने आदर्शवाद से बहुत कुछ मुक्त होकर जिस यथार्थवादी दृष्टिकोण को ग्रहण किया था, उसकी परंपरा को बढ़ाने का श्रेय यशपाल को है।'(नगेंद्र)। यशपाल के ऐतिहासिक उपन्यास अमिता और दिव्या हैं। इसके अतिरिक्त उनके सामाजिक यथार्थवादी उपन्यास हैं- दादा कामरेड, देशद्रोही, झूठा सच इत्यादि। भगवतीचरण वर्मा और रामेश्वरशुक्ल अंचल ने इस परंपरा को बढ़ाया है। बाद के उपन्यासकारों में अमृतलालनागर अपने उपन्यास 'बूंद और समुद्र', 'अमृत और विष', 'मानस का हंस' के लिए विशेष रूप से जाने जाते हैं। अब उपन्यास का एक बृहत आधुनिक क्षेत्र विस्तृत हो चुका था। इसमें ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक चेतना संपन्न, आधुनिकता बोध वाले प्रयोगशील उपन्यास लिखे जाने लगे। आधुनिकता बोध संपन्न उपन्यासों में 'लाल टीन की छत' (निर्मल वर्मा), 'आपका बंटी' (मन्नू भंडारी) सहित और भी कई उपन्यास

हैं। उपन्यास विधा को समृद्ध करने में उल्लेखनीय योगदान देने वाले अन्य रचनाकार हैं- धर्मवीर भारती (सूरज का सातवाँ घोड़ा), श्रीलाल शुक्ल (राग दरबारी), शैलेश मटियानी, प्रभाकर माचवे, उपेंद्रनाथ अश्क, देवराज, रघुवंश, राही मासूम रज़ा, कृष्णा सोबती, रांगेय राघव, कमलेश्वर, उषा प्रियंवदा, ममता कालिया, नरेंद्र कोहली, चित्रा मुद्गल इत्यादि।

1.3.3.3 कहानी

द्विवेदी युग की 'सरस्वती' (1900ई.) पत्रिका के माध्यम से आधुनिक कलात्मक कहानियों का अस्तित्व हिंदी साहित्य के पटल पर उभरा। 1912-18ई. के बीच यह विधा प्रतिष्ठित हो गई। इंदुमती, प्लेग की चुड़ैल, ग्यारह वर्ष का समय, दुलाईवाली- हिंदी की आरंभिक कहानियाँ हैं। वृंदावनलाल वर्मा ऐतिहासिक कहानियों के जनक माने जाते हैं। राधिकारमण सिंह की 'कानों में कंगना' (1913) और गुलेरी की 'उसने कहा था' (1915) महत्वपूर्ण कहानियाँ हैं। प्रेमचंद की सौत, पाँच परमेश्वर आदि कहानियाँ भी 'सरस्वती' पत्रिका में ही प्रकाशित हुई। अपनी कहानियों के माध्यम से प्रेमचंद जीवन का आदर्श प्रतिष्ठित कर रहे थे और प्रसाद मनुष्य के आंतरिक भाव-द्वंद्व को व्यक्त कर रहे थे। कहानी के उद्भव और उसकी विभिन्न धाराओं के विकास का श्रेय इसी युग को जाता है। प्रेमचंद और प्रसाद छायावाद युग में भी छाए रहे। प्रेमचंद के बाद जैनेन्द्र ने कहानी को नयापन दिया। यह नयापन था घटनाओं और चरित्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण। 'पाजेब' उनकी बहुप्रचलित कहानी है। उन्होंने मनोवैज्ञानिक कहानियाँ लिखी। अज्ञेय, विष्णु प्रभाकर और सुभद्राकुमारी चौहान की कहानियाँ भी उल्लेखनीय हैं। छायावादोत्तर काल में कहानी के विषय, कथ्य-शिल्प और गठन से जुड़े कई आंदोलन चले और कहानी का स्वरूप उसके अनुसार बदलता रहा। इन आंदोलनों में सबसे पहले कहानी विधा के स्वरूप में परिवर्तन लाने का श्रेय 'नई कहानी' (1950 - 60) को जाता है। इसके प्रवर्तक माने गए राजेंद्र यादव, कमलेश्वर और मोहन राकेश। कहानी के शिल्प में अन्य गद्य विधाओं का समावेश नई कहानी के दौर में ही हुआ। 1960 के बाद नई कहानी की प्रतिक्रिया में 'अकहानी' का जन्म हुआ। अकहानी को साठोत्तरी कहानी के नाम से भी जाना जाता है। इसके पुरस्कर्ताओं में दूधनाथ सिंह, गंगाप्रसाद विमल भी है। इसमें अनुभव संसार का विरोध किया गया और जीवन के सच को हू ब हू कागज पर तटस्थ रूप से उकेरने की पहल की गई। अपने स्वरूप में यह निबंध, संस्मरण, डायरी इत्यादि के निकट चला गया। इन कहानियों में विचार गौण था और शिल्प मुख्य। यह कथावस्तु के स्तर की क्षति थी। इस क्षतिपूर्ति के लिए सचेतन कहानी (1964,महीप सिंह) का अस्तित्व सामने आया। इससे जुड़े लेखकों का बल कहानी के कथ्य पर अधिक रहा। इससे नई कहानी के स्वरूप को विस्तार मिला। समानांतर कहानी (1972 – 78, कमलेश्वर) में 'आम आदमी' कहानी का केंद्र बना। इसी में कहानी की सहजता और स्वाभाविकता बनाए रखने के लिए सहज कहानी (अमृतराय, 1968) की वैचारिक परिकल्पना सामने आई । इसके अतिरिक्त सक्रिय कहानी (राकेश वत्स, 1979) और जनवादी कहानी (1982,मार्क्सवाद) इत्यादि कहानी आन्दोलन भी उभरे। कथ्य और शिल्प के स्तर पर इन आंदोलनों से प्रभावित कहानियों में थोड़े बदलाव कुछ समय के लिए देखने को मिले।

'1979 की हिंदी कहानियाँ : एक कथा-वर्ष से गुजरते हुए' शीर्षक अपने आलेख में महीप सिंह ने वर्ष भर की कहानियों का केन्द्रीय सूत्र ढूंढने को जोखिम भरा और श्रमसाध्य कार्य कहा है। महीप सिंह के शब्दों में, "उस वर्ष में प्रकाशित अनेक कहानियों के माध्यम से मैंने यह पहचानने की कोशिश की कि हमारी कहानियों में अधिकार के दुरूपयोग, धन और सेक्स की नंगी भूख, सभी स्तरों पर लगभग सभी वर्गों द्वारा शोषक और शोषित स्थितियों को ग्रहण करते चले जाने की मानसिकता और हफरा-तफरा से भरी ऐसी अवसरवादिता जिसे सैद्धांतिकता का निर्लज्ज जामा पहनाया जाता है, को किस प्रकार रेखांकित किया गया है।"

समकालीन कहानी में विविध विमर्श आधारित कहानियाँ देखने को मिलती हैं, जैसे - स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, किन्नर विमर्श, पर्यावरण, वृद्धावस्था विमर्श इत्यादि। कहानी संसार में स्त्री लेखिकाओं में कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, उषा प्रियंवदा, सूर्यबाला, ममता कालिया इत्यादि उल्लेखनीय नाम हैं।

इसी कहानी से एक नई विधा 'लघुकथा' ने जन्म लिया है। नाम के अनुरूप अपने कलेवर में छोटी पर प्रभावोत्पादक प्रकृति की ये लघुकथाएँ बहुत कम शब्दों में रची जाती हैं। किसी एक ही संवेदना को प्रकट करती हैं।

1.3.3.4 निबंध

निबंध को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने गद्य की कसौटी कहा है। यह ससीम व्यक्तित्व से असीम विचार तक पहुँचने की यात्रा है। समाज और समय के परिप्रेक्ष्य में जीवन से संबंधित चिंतन को अभिव्यक्त करने के लिए जिस गद्य विधा का प्रयोग किया जाता है उसे निबंध कहते हैं। इस विधा का आरंभ भारतेंदु युग में हुआ। साहित्य के साथ पत्रकारिता का भी प्रादुर्भाव उस युग में हो रहा था। ब्राह्मण, हिंदी प्रदीप, हरिश्चंद्र मैगजीन इत्यादि पत्र-पत्रिकाओं ने निबंध विधा को समृद्ध किया। इस समय राजनीति, समाज-सुधार, धर्म-अध्यात्म, अतीत का गौरव, आर्थिक दुर्दशा एवं प्रेरणास्पद चरित्रों को निबंध के विषय के रूप में चुना जाता था। बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र ने इस विधा में उल्लेखनीय योगदान दिया जिसे देखते हुए रामचंद्र शुक्ल ने इन्हें 'स्टील और एडीसन' कहा। इस युग में विचारात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक, विवरणात्मक, कथात्मक, इतिवृत्तात्मक, शोधात्मक इत्यादि शैलियों में निबंध लेखन के तहत गद्य विधा की अभिव्यक्ति हुई। द्विवेदी युग में ही रामचंद्र शुक्ल के आरंभिक निबंध प्रकाशित हुए थे। इस युग के प्रमुख निबंधकार हैं - माधव प्रसाद मिश्र (माधवमिश्र निबंधमाला), सरदार पूर्ण सिंह (आचरण की सभ्यता, सच्ची वीरता, मजदूरी और प्रेम, कन्यादान), चंद्रधर शर्मा गुलेरी (कछुवा धरम, मारेसि मोहिं कुठाव) इत्यादि। छायावाद युग में निबंध विधा के अंतर्गत विषय के स्थान पर व्यक्ति और लालित्य को प्रधान माना गया। रामचंद्र शुक्ल के वैचारिक और समीक्षात्मक निबंधों में इस विधा का चरम उत्कर्ष देखा जा सकता है। उनके निबंध चिंतामणि में संकलित हैं। उनके इन मनोविकार संबंधी निबंधों को रामस्वरुप चतुर्वेदी ने 'मानव स्वभाव का संश्लिष्ट चित्रण' कहा है। शुक्ल युग के प्रमुख निबंधकार हैं- निराला, माखनलाल चतुर्वेदी, राहुल

सांकृत्यायन, बाबू गुलाबराय इत्यादि। शुक्लोत्तर युग में वैचारिक निबंध की परंपरा बनी रही। इस युग में निबंध की ललित शैली और उसमें व्यंग्य का पुट देखने को मिला। निबंध में लालित्य का दर्शन आचार्य शुक्ल के निबंध में भी होता है। रामविलास शर्मा, जैनेन्द्र और नगेंद्र ने वैचारिक निबंध की परंपरा को आगे बढ़ाया। ललित निबंध में विचारों और भावों की प्रस्तुति में सरलता और सहजता का ध्यान रखा जाता है। इसकी वाक्य रचना लघु और भाषा सरस होती है। आत्मीयता, अनुभूति और कल्पना का सुंदर संयोजन ललित निबंध को उबाऊ होने से बचा लेते हैं। विद्यानिवास मिश्र (मेरे राम का मुकुट भींज रहा है), हजारीप्रसाद द्विवेदी (अशोक के फूल, विचार और वितर्क), कुबेरनाथ राय (प्रिया नीलकंठी, रस आखेटक, विषाद योग) इत्यादि ललित निबंधकार हैं। 'ललित निबंध के क्षेत्र में अन्य प्रयोगकर्त्ता कृष्णबिहारी मिश्र तथा विवेकी राय हैं। 'बेहया का जंगल' कृष्णबिहारी मिश्र का संकलन है। कलकत्ता जैसे महानगर में रहकर अपने ग्रामीण अंचल की याद और उस अंचल के जीवन-क्रम को बेहतर बनाने की चिंता इन निबंधों के मूल में है। बेहया घास फैलती जाती है और ग्रामीण क्षेत्रों की मिट्टी में उर्वरा शक्ति को दिन-दिन कम करती जाती है, खेती-किसानी और अपने गाँव से जुड़े लेखक के मन में यह पीड़ा का समुचित कारण है। यह बेहया घास प्रतीकार्थ में विदेशी आरोपित संस्कृति है, जिसे फैशन कहना अधिक उपयुक्त होगा, जो जन-सामान्य के जीवन को अंदर से आधारहीन बनाती जा रही है। दोनों अर्थों में बेहया का प्रसार घातक है।... विष्णुकांत शास्त्री के निबंध ('कुछ चंदन की कुछ कपूर की') आलोचना तथा ललित निबंध के संधि-बिंदु पर रचे गए हैं। प्रभाकर माचवे अपेक्षया नए विषयों में रुचि लेते हैं। उनके संकलन 'खरगोश के सींग' में विनोद से आगे व्यंग्य की तिक्तता है।'

निबंध के माध्यम से व्यंग्य का भी अस्तित्व बना हुआ है। गद्य के माध्यम से इसकी शुरुआत भारतेंदु युग में हुई थी। इसके विकास की गति छिटपुट रही। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हरिशंकर परसाई ने इसे एक स्वतंत्र विधा के रूप में प्रतिष्ठित किया। इस शैली के रचनाकार हैं- प्रभाकर माचवे, गोपाल प्रसाद व्यास, नामवर सिंह इत्यादि। समसामयिक विषयों पर हास्य-विनोद मिश्रित तीखी टिपण्णी इस विधा के लेखन की विशिष्टता है। समाज की अनैतिकताओं और अराजकताओं पर शाब्दिक लगाम और हल्की छींटाकशी के रूप में इसे देखा जा सकता है। इसका उद्देश्य विकृतियों की पहचान कर उसे उजागर करना है।

1.4 पाठ सार

अंग्रेजों द्वारा हिंदी गद्य लेखन की प्रवृत्ति में विस्तार से पूर्व ही इंशा कृत 'रानी केतकी की कहानी' और मुंशी सदासुखलाल की ज्ञानोपदेश वाली पुस्तक लिखी जा चुकी थी। अंग्रेजों के आश्रय से पूर्व ही जब मुगलों के आक्रमणों से दिल्ली और आस-पास का जन-जीवन अस्त-व्यस्त हो रहा था। यहाँ के लोग देश के अनेक भागों में आश्रय और जीविका की तलाश में गए। उनके साथ उनकी खड़ी बोली भी गई। धीरे-धीरे यह शिष्ट लोगों के बोल-चाल की भाषा बनी। तभी से इस भाषा में गद्य लेखन की प्रवृत्ति भी विकसित हुई। इससे पहले तक साहित्य का स्वरूप पद्यमय ही था। हिंदी की काव्यभाषा ब्रजभाषा थी और उर्दू की काव्यभाषा अरबी-फारसी

मिश्रित खड़ी बोली। इन उर्दू कवियों की भाषा धीरे-धीरे हिंदी कवियों को लुभा रही थी। खड़ी बोली का एक रूप दरबारी उर्दू कवि गढ़ रहे थे और अपने स्वाभाविक रूप में खड़ी बोली हिंदू व्यापारियों के साथ अपना विकास कर रही थी। आधुनिक हिंदी गद्य के विकास में 'ईसाई धर्म प्रचार' और 'अंग्रेजी शिक्षा पद्धति' का भी अच्छा योगदान रहा। पुस्तकों के मुद्रण के लिए छापेखानों की व्यवस्था की गई। फोर्ट विलियम कॉलेज और हिंदू कॉलेज इसी का एक भाग है। प्रो. गिलक्राइस्ट ने पाठ्य-पुस्तक लेखन हेतु हिंदी गद्य का चुनाव किया। उनकी इस परियोजना से देश के हिंदी प्रेमी जुड़े। इनमें सदल मिश्र और लल्लूलाल का नाम उल्लेखनीय है। मुंशी सदासुखलाल और इंशाअल्ला खाँ इस परियोजना का हिस्सा नहीं थे पर हिंदी गद्य लेखन की ओर प्रवृत्त थे। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज (1867ई.) और तदीय समाज ने भी जनजागरण की दृष्टि से इस क्षेत्र में अनुवाद और मौलिक लेखन जारी रखा। व्यक्तियों और संस्थाओं के सहयोग से कई जगह छापेखाने खोले गए। बंगदूत, उदन्त मार्तंड, बुद्धिप्रकाश, ज्ञानप्रदायिनी जैसे पत्र-पत्रिकाओं से गद्य की भाषा का स्वरूप स्थिर करने में मदद मिली। राजा लक्ष्मण सिंह और शिवप्रसाद सितारे हिंद हिंदी-उर्दू विवाद के समय हिंदी का पक्ष मजबूती से थामे रहे और सृजन करते रहे। गद्य की विधा का स्वरूप निर्धारण और विकास भारतेंदु युग से आरंभ हुआ। भारतेंदु की लेखन शैली साहित्यिक हिंदी थी जिसमें न उर्दू के प्रति भावनात्मक झुकाव था और ना ही संस्कृत के प्रति। विषयानुरूप सधी हुई, इनके द्वारा व्यवहृत हिंदी भाषा का सभी ने अनुकरण किया। साहित्य के क्षेत्र में नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध, आलोचना, जीवनी और यात्रावृत्तांत का उदय इसी युग में हुआ।

1.5 पाठ की उपलब्धियाँ

- मुंशी सदासुखलाल ही सबसे पहले गद्य लेखन की ओर उन्मुख हुए; इसलिए इन्हें आधुनिक हिंदी गद्य का प्रवर्तक माना जाता है।
- आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने आधुनिक काल को गद्यकाल कहा।
- अंग्रेजों के भारत आने से पहले भारत में हिंदी गद्य पर काम हो रहा था।
- अंग्रेजों द्वारा अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली के कार्यान्वयन हेतु तदनुरूप पाठ्य पुस्तकों के निर्माण कार्य से हिंदी गद्य का अभूतपूर्व विकास हुआ।
- मुंशी सदासुखलाल और लल्लूलाल द्वारा गद्य विधा हेतु प्रयुक्त हिंदी भाषा उर्दू के प्रभाव से बिलकुल मुक्त थी। राजा लक्ष्मण सिंह और शिवप्रसाद सितारेहिंद हिंदी-उर्दू विवाद के समय हिंदी के पक्ष में मजबूती से डटे रहे।
- भारतेंदु युग में गद्य की विविध विधाओं का उदय हुआ। पत्रकारिता के साथ हिंदी गद्य ने विकास के स्वरूप को प्राप्त किया।

1.6 शब्द संपदा

1. क्रमिक = सिलसिलेवार
2. तदनुरूप = उसके अनुसार
3. प्रयुक्त = प्रयोग किया गया
4. बहिष्कृत = निकाल दिया जाना
5. लुप्त = अदृश्य हो जाना

1.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. आधुनिक हिंदी गद्य के उद्भव की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालें।
2. आधुनिक हिंदी गद्य के विकास में किन प्रमुख व्यक्तियों का योगदान उल्लेखनीय है? चर्चा करें।
3. काव्यभाषा के समृद्ध साहित्य के रहते हुए, गद्य विधा की आवश्यकता क्यों महसूस हुई?
4. आधुनिक हिंदी गद्य की प्रारंभिक विकसित विधाओं पर प्रकाश डालिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. आधुनिक हिंदी गद्य के विकास में पत्र-पत्रिकाओं के योगदान पर संक्षिप्त चर्चा कीजिए।
2. आधुनिक हिंदी गद्य विधाओं के स्वरूप विकास पर चर्चा कीजिए।
3. नाटक, उपन्यास, कहानी, एकांकी, लघुकथा, निबंध और आलोचना पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए।

1. रामप्रसाद निरंजनी भाषा योगवशिष्ठ के रचयिता कौन हैं? ( )
   (अ) रामप्रसाद निरंजनी (आ) अकबर (इ) गंग (ई) लल्लूलाल

2. हिंदी की प्रथम प्रौढ़ रचना कौन है? ( )

(अ) चंद छंद बरनन की महिमा (आ)भाषा योगवशिष्ठ (इ) अ,आ (ई) कोई नहीं

3. अंग्रेजी शिक्षा पद्धति का समर्थन किस अंग्रेज़ अधिकारी ने किया? ( )

(अ) भारतेंदु (आ) मेकाले (इ) जॉन गिलक्राइस्ट (ई) लल्लूलाल

II रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1. बाइबिल का अनुवाद .. .. ने किया।
2. हिंदी का पहला समाचार पत्र .. .. है।
3. हिंदी निबंध के स्टील और एडीसन .. .. और .. .. हैं।
4. भाग्यवती उपन्यास के रचनाकार .. .. हैं।

III सुमेल कीजिए

i) हिंदू कॉलेज	(अ) 1800
ii) फोर्ट विलियम कॉलेज	(आ) महावीर प्रसाद द्विवेदी
iii) ब्रह्म समाज	(इ) 1817
iv) सरस्वती	(ई) राजा राममोहन राय

1.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल
2. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेंद्र
3. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरुप चतुर्वेदी
4. हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी

इकाई 3 : रामचन्द्र शुक्ल: एक परिचय

3.0 प्रस्तावना

3.1 उद्देश्य

3.2 मूल पाठ (रामचन्द्र शुक्ल) एक परचिय

3.2.1 जीवन परिचय

3.2.2 रचना यात्रा

3.2.3 आचार्य शुक्ल की निबन्धकला

3.2.4 शुक्ल जी की समीक्षा पद्धति

3.2.5 शुक्ल जी की भाषा शैली

3.2.6 हिंदी साहित्य में शुक्ल जी का स्थान

3.3 पाठ सार

3.4 पाठ की उपलब्धियाँ

3.5 शब्द संपदा

3.6 परीक्षार्थ प्रश्न

3.7 पठनीय पुस्तकें

3.0 प्रस्तावना

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एक बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार माने जाते हैं। जिस क्षेत्र में भी अपनी लेखनी चलाई उसपर उन्होंने अपनी अमिट छाप छोड़ी। आधुनिक हिन्दी के विकास क्रम में आचार्य पं. रामचन्द्र शुक्ल का व्यक्तित्व अनेक दृष्टियों से अप्रतिम है। शुक्ल जी शायद हिन्दी के पहले समीक्षक हैं जिन्होंने वैविध्यपूर्ण जीवन के ताने बाने में गुंकित काव्य के गहरे और व्यापक लक्ष्यों का साक्षात्कार करने का वास्तविक प्रयत्न किया है। उन्होंने भाव या रस को काव्य की आत्मा माना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिंदी के गौरव थे। समीक्षा के क्षेत्र में उनका कोई प्रतिद्वन्द्वी न उनके जीवन-काल में था, न अब (उनके स्वर्गवास के अनन्तर) कोर्द उनका समकक्ष आलोचक है। पं. रामचन्द्र शुक्ल सच्चे अर्थों में आचार्य थे। अतः 'आचार्य' शब्द ऐसे ही कर्Ÿाा साहित्यकारों के योग्य है' शुक्ल जी ने साहित्य में विचारों के क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया है। इस सम्पूर्ण लेखन में भी उनका सबसे महत्वपूर्ण एवं कालजयी रूप समीक्षक, निबन्ध लेखक एवं साहित्यक इतिहासकार के रूप में प्रकट होता है।

नलिनविलोचन शर्मा ने अपनी पुस्तक 'साहित्य का इतिहास दर्शन में कहा है कि शुक्ल जी से बड़ा समीक्षक सम्भवतः उस युग में किसी भी भारतीय भाषा में नहीं था। अैर यह बात विचार करने पर सत्य प्रतीत होती है बल्कि ऐसा लगता है कि समीक्षक के रूप में शुक्ल जी अब भी अपराजेय है। अपनी समस्त सीमाओं के बावजूद उनका पैनापन, उनकी गम्भीरता एवं उनके बहुत से निष्कर्ष एवं स्थापनाएं किसी भी भाषा के समीक्षा साहित्य के लिए गर्व का विषय बन सकती है।

3.1 उद्देश्य

प्रिय छात्रों ! इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के व्यक्तित्व से परिचित होंगे।

- आचार्य रामचन्द्र की रचनाओं से परिचित होंगे।
- शुक्ल जी की रचनाओं की विशेषताओं से अवगत होंगे।
- शुक्ल जी के साहित्य लिखने की कला से परिचित होंगे।
- हिंदी साहित्य में रामचन्द्र शुक्ल जी के महत्व को जान सकते हैं।

3.2 मूल पाठ (रामचन्द्र शुक्ल) एक परचिय

3.2.1 जीवन परिचय:- हिन्दी के महान रचनाकार और आलोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का जन्म 1884 ई. की आश्विन शुक्ल पूर्णिमा को उŸार प्रदेश के बस्ती जिले के अगोना ग्राम में हुआ। उनके पूर्वज उŸार प्रदेश के गोरखपुर जिले के राप्ती नदी के किनारे स्थित 'भेड़ी' ग्राम के निवासी थे। इनके पिता का नाम चन्द्रबली शुक्ल था। वे एक तीव्र बुद्धि तथा पढ़ाई में मन लगाने वाले छात्र थे। अतः वे जल्दी ही काशी के 'कवीन्स' कालेजियट स्कुल से एन्ट्रªेंस पास कर सरकारी नौकरी में लग गए।

सन् 1880 ई. में शुक्ल जी जब केवल चार वर्ष के थे, उनके पिता चन्द्रबली शुक्ल हमीरपूर की 'राठ' तहसील में सुपरवाइज़र कानूनगो हो गए। 'राठ' में ही बालक रामचन्द्र शुक्ल का पंडित गंगा प्रसाद के हाथों अक्षरारंभ हुआ। राचमन्द्र शुक्ल जी को शुरू से ही मातृभाषा हिन्दी के प्रति लगाव था किन्तु उस समय उर्दू-फारसी से बहुत अधिक लगाव था। रामचन्द्र शुक्ल ने अपने पिता से छिप-छिपकर हिन्दी की पुस्तकें पढ़ा करते थे। इस तरह राठ में लगभग चार वर्षों तक आरंभिक शिक्षा के उपरांत उन्हें मिर्जापुर जाने का अवसर मिला। इसी बीच पं. रामचन्द्र शुक्ल की माता स्वर्ग सिधार गई। मातृ सुख के अभाव के साथ-साथ विमाता से मिलने वाले दुःख ने उनके व्यक्तित्व को अल्पायु में ही परिपक बना दिया।

अध्ययन के प्रति लगनशीलता शुक्ल जी में बाल्यकाल से ही थी। किंतु इसके लिए उन्हें अनुकूल वातावरण न मिल सका। मिर्जापूर के लंदन मिशन स्कूल से 1901

ई. में स्कुल फाइनल परीक्षा उत्तीर्ण की। उनके पिता की यह इच्छा थी कि शुक्ल जी कचहरी में जाकर दफतर का काम सीखें, किंतु शुक्ल जी उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहते थे। उनके पिता ने उन्हें वकालत पढ़ने के लिए इलाहाबाद भेजा पर उनकी रूचि उसमें न होकर साहित्य में थी। अतः परिणाम यह हुआ कि वे उसमें अनुत्तीर्ण रहे। शुक्ल जी के पिजाजी ने उन्हें नायब तहसीलदारी की जगह दिलाने का प्रयास किया, किन्तु उनकी स्वभिमानी प्रकृति के कारण यह संभव न हो सका। परिक्षाओं की सफलता या असफलता से अलग वे बराबर साहित्य, मनोविज्ञान, इतिहास आदि के अध्ययन में लगे रहे। मिर्जापुर के पंडित केदारनाथ पाठक, बदरी नारायण चैधरी 'प्रेमधन' के संपर्क में आकर उनके अध्ययन को और बल मिला। यहीं पर उन्होंने हिंदी, उर्दू, संस्कृत एवं अंग्रेजी के साहित्य का गहन अनुशीलन प्रारंभ किया, जिसका उपयोग वे आगे चलकर अपने लेखन में जमकर कर सके।

मिर्जापुर के तत्कालीन कलेक्टर ने रामचन्द्र शुक्ल को एक कार्यालय में नौकरी भी दे दी थी, पर हेड क्लर्क से उनके स्वाभिमानी स्वभाव की पटी नहीं। उसे उन्होंने छोड़ दिया। फिर कुछ दिनों तक रामचन्द्र शुक्ल मिर्जापुर के मिशन स्कूल में चित्रकला के अध्यापक रहे। सन् 1909-1910 ई. के लगभग वे 'हिन्दी शब्द सागर के संपादन में वैतनिक सहायक के रूप में काशी आ गए। यहीं पर काशी नागरी प्रचारिणी सभा के विभिन्न कार्यों को करते हुए उनकी प्रतिभा में और चार चाँद लग गए।

शुक्ल जी नागरी प्रचारणी सभा के आग्रह पर 'हिंदी शब्द सागर' के संपादन कार्य में लगे। इसके लिए उन्हें मिर्ज़ापुर छोड़कर बनारस जाना पड़ा। बनारस में ही वस्तुतः शुक्ल जी के जीवन का वह दौर शुरू हुआ, जिसके कारण हिंदी जगत में उन्हें 'आचार्य का सम्मान प्राप्त हुआ।

शुक्ल जी के सृजन-कर्म का उत्कर्ष काल बीसवीं शताब्दी का तीसरा और चैथा दशक है- छायावादी काव्यान्दोलन का समय। यह वह समय है जिसमें का संघर्ष भी तीव्र गति से तीव्रतर हो चला था। चन्द्रशेखर शुक्ल ने ससच ही कहा है कि मिर्जापुर को शुक्ल जी के विकास और निर्माण की भूमि कहा जाये तो काशी को उनका कर्म क्षेत्र कहने में कोई अतिरंजना नहीं। इसी धर्म क्षेत्र में उनकी अमर रचनाएँ लिखी गई

'हिन्दी शब्द-सागर' का संपादन जिस तत्परता और मनोयोग से शुक्ल जी ने किया है, उसे बाबु श्यामसुन्दर दास जी ने मेरी 'आत्म कहानी' में इन शब्दों में कहा है। ''यदि यह कहा जाय कि शब्द साबर की उपयोगिता एवं सर्वागीणता का अधिकांश श्रेय पं. रामचन्द्र शुक्ल को ही है तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी। एक प्रकार से यह उन्हीं के परिश्रम, विद्धता और विचारशीलता का फल है। अतः यह भी सच है कि 'कोश' ने शुक्ल जी को बनाया और 'कोश' को शुक्ल जी ने। सन् 1919 ई. में शुक्ल जी ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य शुरू किया। जहाँ बाबू श्याम सुंदर दास की मृत्यु के बाद 1937 से जीवन के अन्तिम काल (1941) तक विभागाध्यक्ष का पदशुशोभितविद्वार 2 फरवरी 1941 ई. को हृदय की गति रूक जाने से शुक्ल जी का देहांत हो गया।

बोध प्रश्न

....

3.2.2 रचना यात्रा

हिंदी निबंध को नया आयाम देकर उसे धरातल पर प्रतिष्ठित करने वाले शुक्लजी हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य आलोचक, श्रेष्ठ निबन्धकार, निष्पक्ष इतिहासकार, महान, शैलीकार युग-प्रवर्तक आचार्य थे। इन्होंने सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों प्रकार की आलोचनाएँ लिखीं। इनकी विद्धता के कारण ही 'हिन्दी शब्द सागर' के

सम्पादन कार्य में सहयोग के लिए इन्हें बुलाया गया। इन्होंने 19 वर्षों तक 'काशी नागरी प्रचारिणी' पत्रिका का सम्पादन भी किया। इन्होंने अंग्रेजी और बँगला में कुछ अनुवाद भी किए। आलोचना इनका मुख्य और प्रिय विषय था। शुक्ल जी की प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं-

कहानी : 'ग्यारह वर्ष का समय' 'सरस्वती', सितंबर 1903 ई.

कवित : मधुस्रोत (काव्य - संग्रह) नागरी प्रचारिणी सभा, 1971 ई.

जीवनी : श्री राधाकृष्णन् दास की जीवनी, 1908 ई.

संस्मरण : प्रेमधन की छाया - स्मृति

आलोचना : जायसी ग्रन्थावली की भूमिका 1920 ई.

गोस्वामी तुलसीदास - 1923 ई.

हिन्दी साहित्य का इतिहास - 1929 ई.

विचार - वीथी - 1930 ई.

चिन्तामणि - पहला भाग - 1930 ई.

सूरदास -

चिन्तामणि - दूसरा भाग - 1945 ई. (स. विश्वनाथ ्रसाद मिश्र)

चिन्तामणि - तीसरा भाग - 1983 ई. (स. डाॅ. नामवर सिंह)

रसमीमांसा - 1949 ई.

संपादन: तुलसी ग्रन्थावली

जायसी ग्रन्थावली

भ्रमटगीत सार

वीर सिंह देव चरित

अनुवाद - कल्पना का आनंद (एसेज आ◌ॅन एमेजिनेशन) एडीसन, 1905 ई.

मेगास्थनीज कालीन भारत (मेगास्थनीज इंडिया - 1897 ई.)

साहित्य (लिटरेचर - जा◌ॅन हेनरी न्युमैन) 1904 ई.

राज्य प्रबंध शिक्षा - (माइनर हिंट्स - सर ही. माधवराज) - 1913 ई.

आदर्श जीवन (प्लेन लीविंग, हाई थिंकिंग) 1914 ई.

विश्व-प्रपंच (रिइल आफ द यूनिवर्स) - 1920 ई.

शहशांक - (राखालदास बंधोपाध्याय) - 1922 ई.

बुद्धचारित (लाइट आ◌ॅफ एशिया - एडविन आर्नल्ड) - 1922 ई.

वैसे शुक्ल जी की कृतियों पर विचार किया जाए तो वे मुख्यतः तीन प्रकार की है।
मौलिक कृत्तियाँ

आलोचनात्मक ग्रंथ: इसके अन्तर्गत सूर, तुलसी, जायसी पर की गई आलोचाए काव्य में रहस्यवाद काव्य में अभिव्यंजनावाद, रसमीमांसा आदि आती है।

निबन्धात्मक ग्रन्थ: उनके निबन्ध चिंतामणि नामक ग्रंथ के दो भगों में संग्रहीत है। चिंतामणि के निबंधों के अतिरिक्त शुक्लजी ने कुछ अन्य निबंध भी लिखे हैं, जिनमें मित्रता, अध्ययन आदि निबंध सामान्य विषयों पर लिखे गये निबन्ध है। मित्रता निबन्ध जीवनोपयोगी विषय पर लिखा गया उच्चकोटि का निबन्ध है जिसमें शुक्लजी की लेखन शैली की भी विशेषताएं झलकती है। क्रोध निबन्ध में उन्होंने सामाजिक जीवन में क्रोध का क्या महत्व है, क्रोधी की मानसिकता जैसे सम्बन्धित पहलुओं का विश्लेषण किया है।

ऐतिहासिक ग्रन्थ:- हिंदी साहित्य का इतिहास उनका बहुत ही महत्वपूर्ण है।

अनदित कृतियाँ:- शुक्ल जी की अनुदित कृतियाँ कई है। शशांक उनका बंगला से अनुवादित उपन्यास है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अंग्रेजी से विश्वप्रपंच, आदर्श जीवन,

मेगस्थनीज का भारतवर्षीय वर्णन, कल्पना का आनन्द आदि रचनाओं का अनुवाद किया।

सम्पादित कृतियाँ:- शुक्ल जी के सम्पादित ग्रन्थों में हिंदी शब्दसागर, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भ्रमरगीत सार, सूर, तुलसी जायसी ग्रंथावली उल्लेखनीय है।

शुक्ल जी ने प्रायः साहित्यिक और मनोवैज्ञानिक निबंध लिखा है।

(1) **सैद्धान्तिक आलोचनात्मक निबंध -** कविता कथा है, काव्य में लोक मंगल की साधनावस्था, साधारणीकरण और व्यक्ति वैचित्रयवाद आदि निबंध सैद्धांतिक आलोचना के अंतर्गत आते हैं। आलोचना के साथ-साथ अन्वेषण और गवेषण करने की प्रवृत्ति भी शुक्ल जी में पर्याप्त मात्रा में है। हिंदी साहित्य का इतिहास इनकी इसी प्रवृत्ति का परिणाम है।

(2) **व्यावहारिक आलोचनात्मक निबंध -** भारतेंदु हरिश्चंद, तुलसी का भक्ति मार्ग, मानस की धर्म भूमि आदि निबंध व्यावहारिक आलोचना के अंतर्गत आते हैं।

(3) **मनोवैज्ञानिक निबंध -** मनोवैज्ञानिक निबंधों में करूणा, श्रद्धा, भक्ति, लज्जा ग्लानि, क्रोध, लोभ और प्रीति आदि भावों तथा मनोविकारों पर लिखे गए निबंध आते हैं। शुक्ल जी के ये मनोवैज्ञानिक निबंध सर्वधा मौलिक है। उनकी भांति किसी भी अन्य लेखक ने उपर्युक्त विषयों पर इतनी प्रौढ़ता के साथ नहीं लिखी। शुक्ल जी के निबंधों में उनकी अभिरूचि विचारधारा अध्ययन आदि का पूरा-पूरा समावेश है। वे लोकादर्श के पक्के समर्थक थे। इस समर्थन की छाप उनकी रचनाओं में सर्वत्र मिलती है।

3.2.3 आचार्य शुक्ल की निबन्धकला

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिंदी के सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार माने जाते हैं। चिन्तामणि में संकलित निबन्धों में शुक्ल जी की निबन्ध कला का पूर्ण उत्कर्ष दिखाई देता है। इनके निबन्धों में हृदय और बुद्धि का समन्वय किया गया है, वैसे तो उनके निबन्ध

विचार प्रधान ही अधिक है तथा उनमें हृदय तत्व भी स्थान-स्थान पर देखा जाता है। भाषा की पूर्ण-शक्ति का विकास निबन्धों में दिखाई पड़ता है। शुक्ल जी के अनुसार "शुद्ध विचारात्मक निबन्धों का चरम-उत्कर्ष वहीं होता है जहां एक-एक पैराग्राफ में विचार दबा-दबाकर ठुंसे गए हैं और एक एक वाक्य इसी ससम्बद्ध विचार खण्ड के लिए हो।" संक्षेप में शुक्ल जी की निबन्ध कला में हमें निम्नलिखित विशेषताएं देखने को मिलती है।

1. विचारों की सम्पन्नता और सुसम्बद्धता:- शुक्ल जी के निबन्ध मौलिक विचारों से सम्पन्न है। उनमें विचारों की गहनता और प्रोढ़ता के दर्शन होते हैं। उनका प्रत्येक वाक्य सुविचारित, सुचिन्तित तथा व्यंजक होता है। इस प्रकार उनके निबन्धों का प्रत्येक अनुच्छेद गम्भीर विचारों से ओत प्रोत दिखाई देता है। उनके निबन्धों की प्रमुख विशेषता सुसम्बद्धता है।

2. मौलिक चिन्तन:- शुक्ल जी एक मौलिक चिन्तक है, इसका पता उनके निबन्धों से चलता है। मनोविकार सम्बन्धी निबन्धों में वे जिस मनोविकार का वर्णन करते हैं उसके प्रत्यक पक्ष पर मौलिक ढंग से विचार करते हैं। उसका विश्लेषण इतने सूक्षम ढंग से करते हैं कि उस मनोविकार का प्रत्यक पक्ष उजागर हो जाता है। कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि मनोविकारों के विश्लेषण में वे मनोविज्ञान के पण्डितों को भी मात दे रहे हैं। इसी प्रकार काव्य समीक्षा सम्बन्धी निबन्धों में उनका चिन्तन बहुत मौलिक दिखाई पड़ता है। अतः उन्होंने अपने निबन्ध 'कविता क्या है' में उन्होंने काव्य की परिभाषा बहुत ही मौलिक ढंग से की है। जैसे- "हृदय की इसी मुक्ति साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है उसे कविता कहते हैं।"

3. विचार विश्लेषण एवं विषय विवेचन क्षमता:- शुक्ल जी के निबन्ध विचार प्रधान होते हैं। विषय के अनुरूप विश्लेषण की अदभुत क्षमता उनके निबन्धों की प्रमुख विशेषता कही जा सकती है। शुक्ल जी ने भारतीय काव्य शास्त्र और पाश्चात्य

समीक्षा-शास्त्र के गहन अनुशीलन के उपरान्त समीक्षा की एक नई पद्धति विकसित की जिसमें सभी विचारों की सम्यक जाँच करने के साथ-साथ वे अपना मौलिक चिन्तन भी योजना पूर्वक प्रस्तुत करते हैं।

4. भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास:- शुक्ल जी के निबन्धों की भाषा विषय के अनुरूप प्रोढ़, गम्भीर एवं साहित्यिकता का पुट लिए हुए हैं उसमें भाव प्रकाशन की अद्‌भुत क्षमता है। प्रत्येक शब्द अपने स्थानों पर ऐसा जड़ा हुआ है कि उसे हटा पाना असम्भव है, इसी प्रकार उनकी वाक्य रचना निर्दोष व्याकरण सम्भत और उपयुक्त है। शुक्ल जी की भाषा की शक्ति का परिचय मनोविकारों की परिभाषा में दिखाई पड़ता है। जहा सुत्रात्मक शैली का प्रयोग है और एक भी शब्द फालतु नहीं पाया जाता है। संदर्भ के अनुसार भाषा का प्रयोग पाया जाता है।

5. प्रकृति प्रेम:- शुक्ल जी के निबन्धों में प्राकृति प्रेम का परिचय अनेक स्थानों पर देखने को मिलता है। ऐसे स्थलों पर उनके हृदय का उल्लास देखते ही बनता है। निम्न पंक्तियों में उनके प्रकृति प्रेम की व्यंजन हुई है। ''आंखें खोलकर देखो खेत कैसे लहलहा रहे हैं, नाले झाड़ियों के बीच कैसे बह रहे हैं, टेसू के फूल से वनस्थली कैसी लाल हो रही है, चैपायों के झुण्ड चरते हैं, चरवों तान लड़ा रहे हैं और अमराइयों के बीच में गांव झांक रहे हैं''

6. हास्य एवं व्यंग्य की प्रधानता:- शुक्ल जी के निबन्ध विचार प्रधान होते हैं किन्तु भावाकर्षक स्थलों पर उनका हृदय पक्ष प्रबल हो जाता है। यही कारण है कि विषय निरूपण करते समय जहां तहां शुक्ल जी ने अपने निबन्धों में हास्य-व्यंग्य करते हुए वे कहते हैं- ''मोटे आदमियों तुम ज़रा से दुबले हो जाते अपने अन्देशे से ही सही, तो न जाने कितनी ठठरियों पर मांस चढ़ जाता''

7. देश प्रेम एवं मानव प्रेम:- शुक्ल जी के निबन्धों में देश प्रेम और मानव प्रेम की अनेक स्थलों पर व्यंजना हुई है। शुक्ल जी का देश प्रेम दिखावा मात्र नहीं है अपितु उनके हृदय का सच्चा भाव झलकता दिखाई देता है। वे यह मानते हैं कि जिसे अपने देश से प्रेम होगा वह अपने देश के मनुष्य पशु पक्षी, लता, पौधे आदि सबसे प्रेम करेगा। शुक्ल जी के शब्दों में - यदि किसी को अपने देश से प्रेम है तो उसे अपने देश के मनुष्य, पशु-पक्षी, लता-पेड़-पत्ते-वन-पर्वत-नदी व निर्झर सबसे प्रेम होगा। जो यह भी नहीं जानते कि कोयल किस चिड़िया का नाम है, जो यह भी नहीं जानते कि किसानों की झोपड़ी के अन्दर क्या हो रहा है वे यदि इस बने ठने मित्रों के बीच प्रत्येक भारतवासी की औसत आमदनी का पता कर देश-प्रेम का दावा करें तो उनसे पूछना चाहिए कि बिना परिचय का यह प्रेम कैसा?''

शुक्ल जी का दृष्टिकोण बहुत ही मानवतावादी था। उन्होंने अपने निबन्ध ''मानस की धर्म भूमि'' में मानवतावाद को बहुत ही सुन्दर व्याख्या की है।

अतः हम कह सकते हैं कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबन्ध विचार प्रधान है। हिन्दी साहित्य में इनके निबन्ध वस्तुतः मानदण्ड बन गए हैं। अतः शुक्ल जी की निबन्ध कला अप्रतिम है, अद्वितीय है और सर्वश्रेष्ठ है।

बोध प्रश्न

1. ....

3.2.4 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की समीक्षा पद्धति

हिंदी समालोचना का प्रारम्भ वैसे तो शुक्ल जी से पूर्व भारतेन्दु काल में ही हो चुका था पर उसको पोषित कर उसके स्वरूप को वैज्ञानिक बनाने का श्रेय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को ही है। शुक्ल जी हिंदी के पहले समालोचक थे, जिन्होंने भारतीय और पाश्चात्य समालोचना का समन्वय किया। उन्होंने भारतीय समालोचना सिद्धांतों का पूननिर्माण वैज्ञानिक आधार पर किया। उन्होंने प्राचीन और नवीन काव्य

सिद्धान्तों का समन्वय पर अपनी ‘गूढ़ सम्मति देकर समालोचना के नए सिद्धान्त निश्चित किए। शुक्ल जी की समालोचना पद्धति व्याख्यात्मक और निर्णायक दोनों के बीच की है।

शुक्लजी की समालोचना पद्धति की विशेषताए

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की समीक्षा पद्धति की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित मानी जा सकती हैः-

1. शुक्ल जी ने किसी कृति के भावपक्ष और कलापक्ष की सूक्ष्मातिसूक्षम मनोवैज्ञानिक व्याख्या समान रूप से की है। कवि की अन्तवृत्तियों की खोज करने की पद्धति भी इनकी समीक्षा पद्धति में पाई जाती है।
2. शुक्ल जी की मान्यताएं पाश्चात्य एवं भारतीय विचारकों के समन्वय से निर्मित हुई है, फिर भी उसमें अपनी मौलिकता है। उन्होंने कृतियों की आलोचना में अपनी मान्यताओं को कसौटी बनाया है।
3. शुक्ल जी में निर्णय करने की प्रवृति भी पाई जाती है।
4. शुक्ल जी की समीक्षा में बात को अधिक से अधिक स्पष्ट करने की प्रवृति दिखाई देती है। इसके लिए वे नाना प्रकार के उदाहरण देते हैं और ऐसे संदर्भों का सहारा लेते हैं जो सर्व सुलभ हों।

3.2.5 शुक्ल जी की भाषा शैली

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार माने जाते हैं। भाषा और शैली की दृष्टि से उनके निबन्ध अत्यन्त उच्चकोटि के हैं। विचारों के विवेचन, विषय निरूपण और सिद्धान्त प्रतिपादन में उनकी भाषा शैली अत्यन्त सक्षम और सशक्त है। उनके निबन्धों की भाषा शैली सम्बन्धी प्रमुख विशेषताओं का निरूपण निम्नवत किया जा सकता है।

शुक्ल जी की भाषा सम्बन्धी विशेषताएं

1. शुक्ल जी की भाषा विशुद्ध साहित्यिक परिनिष्ठित हिन्दी है जिसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों की प्रमुखता है।

2. उनका भाषा विषयक दृष्टिकोण अत्यन्त उदार था, उन्होंने संस्कृत शब्दों के साथ-साथ अरबी फारसी और अंग्रेज़ी के शब्दों का भी प्रयोग अपनी भाषा में किया है। जैसे- शैकीन, बदतमीजी, बेवकूफी, इनट्यूशन, इमेज आदि।

3. शुक्ल जी का वाक्य विन्यास पूर्णतः व्याकरण सम्मत और सुगठित है। अंग्रेजी ढंग की वाक्य रचना से उनकी भाषा मुक्त है।

4. शुक्ल जी की भाषा में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रयोग देखा जाता है।

5. शुक्ल जी की भाषा में अधिकतर शब्द संस्कृत के तत्सम शब्द है, जिसमें बीच-बीच में तदभव या देशज शब्द नगीनों की भांति जड़ दिए गए हैं। जैसे- छेड़-छाड़, गड़बड़-झाला, सैंत-मैंत, धड़ा-धड़ आदि।

6. शुक्ल जी ने लाक्षणिक भाषा का प्रयोग भी अपने निबन्धों में किया है।

शुक्ल जी की शैली सम्बन्धी विशेषताएं:-

शुक्ल जी ने अपने निबन्धों में विषय के अनुरूप विविध शैलियों का प्रयोग किया है।

1. **आलोचात्मक शैली:-** इस शैली का प्रयोग शास्त्रीय समीक्षा सम्बन्धी निबन्धों में किया है। यह चिन्तन प्रधान शैली है, जिसमें तर्क और विश्लेषण की प्रधानता है, चिन्तन की गम्भीरता तथा भाषा की सुव्यवस्था इस शैली में दिखाई पड़ती है।

2. **गवेषणात्मक शैली:-** सैद्धान्तिक समीक्षा सम्बन्धी निबन्धों में इस शैली के दर्शन होते हैं, इसमें विषय प्रतिपादन की अद्‌भुत क्षमता है।

3. **भावनात्मक शैली:-** शुक्ल जी के निबन्ध में हृदय और बुद्धि का सन्तुलित समन्वय हुआ है। चिन्तन की गम्भीरता तथा भावात्मकता का समावेश दोनों देखा जाता है।

4. **हास्य व्यंग्यपूर्ण शैली:-** शुक्ल जी के निबन्धों में जगह-जगह पर हास्य-व्यंग्य का पुट पाया जाता है। सामाजिक विसंगतियों को व्यक्त करने के लिए वे इस शैली का प्रयोग करते हैं।

5. **समास शैली:-** शुक्ल जी ने अपने साहित्य में जगह-जगह में समास शैली का प्रयोग किया है।

6. **संस्कृत बहुला अलंकृत शैली:-** शुक्ल जी के निबन्धों में कहीं संस्कृत बहुल पदों वाली अलंकृत का भी प्रयोग देखा जाता है। अतः संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि शुक्ल जी की भाषा शैली उनके व्यक्तित्व के अनुरूप है। विषय के अनुरूप उन्होंने भाषा शैली को परिवत्ति किया है।

बोध प्रश्न

शुक्ल जी की भाषा में किन-किन उपमाओं का प्रयोग किया गया है।

3.2.6 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का हिन्दी साहित्य में स्थान

बहुमुखी प्रतिभा के धनी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी को हिंदी साहित्य के उन्नायकों में अति विशिष्ठ स्थान प्राप्त है। इन्होंने निबंधकार, समालोचक, संपादक, अनुवादक, कोशकार आदि विभिन्न रूपों में हिंदी साहित्य को समृद्ध किया है।

आचार्य शुक्ल को हिंदी के मनोवैज्ञानिक निबंध 'लेखन परम्परा का जनम माना जाता है। उन्होंने हिंदी-साहित्य में इतिहास लेखन की परम्परा की शुरूआत की। इस दृष्टि उनके 'हिंदी-साहित्य का इतिहास' को आज भी विशिष्ठ स्थान प्राप्त है।

शुक्ल जी शायद हिन्दी के पहले समीक्षक हैं, जिन्होंने वैविध्यपूर्ण जीवन के ताने बाने में गुकित काव्य के गहरे और व्यापक लक्ष्यों का साक्षात्कार करने का वास्तविक प्रयत्न किया है। उन्होंने भाव और रस को काव्य की आत्मा माना है। जायसी, सूर और तुलसी की समीक्षाओं द्वारा शुक्ल जी ने व्यावहारिक आलोचना का उच्च प्रतिभान प्रस्तुत किया है। इन आलोचनाओं में शुक्ल जी की काव्यमर्मज्ञता, जीवनविवेक, विद्वता और विश्लेषणक्षमता का असाधारण प्रमाण मिलता है।

शुक्ल जी के मनोविकार सम्बंधी निबन्ध में भावों का मनोवैज्ञानिक रूप स्पष्ट रूप से देखा जाता है तथा मानव जीवन में उनकी आवश्यकता, मूल्य और महत्व का निर्धारण हुआ है शुक्ल जी का हिंदी साहित्य का इतिहास हिंदी साहित्य का एक गौरव ग्रंथ कहा जा सकता है। कालविभाजन, साहित्यिक धाराओं का सारर्थक निरूपण तथा कवियों की विशेषताबोधक इनकी प्रमुख विशेषताएँ है।

अतः यह कह सकते हैं कि शुक्ल जी बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार थे। जिस क्षेत्र में भी कार्य किया उसपर उन्होंने अपनी अमिट छाप छोड़ी।

3.3 पाठ सार

रामचन्द्र शुक्ल हिंदी के प्रमुख साहित्यकार के रूप में माने जाते हैं। इनका जन्म बस्ती जिले के अगोना नामक गाँव में सन् 1884 ई. में हुआ था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी की प्रारम्भ से ही साहित्य में विशेष रूचि रही, वे बराबर साहित्य, मनोविज्ञान, इतिहास आदि के अध्ययन में लगे रहे। उन्हें हिन्दी, उर्दू, संस्कृत एवं अंग्रेजी सभी के साहित्य का ज्ञान था। रामचन्द्र शुक्ल 'हिन्दी शब्द सागर' के संपादन में वैतनिक सहायक के रूप में काशी आ गए। यहीं पर काशी नागरी प्रचारिणी सभा के विभिन्न कार्यों को करते हुए उनकी प्रतिभा चमकी। बाद में शुक्ल

जी की नियुक्ति काशी हिंदू विश्वविद्यालय में हिंदी के अध्यापक के रूप में हुई। और बाद में इसी विश्वविद्यालय के विभागाध्यक्ष नियुक्त किए गए।

शुक्ल जी एक बहुत ही उच्च कोटि के साहित्यकार और युग प्रवर्तक आलोचक तथा निबन्धकार थे। आपने सैद्धान्तिक तथा व्यवहारिक दोनों प्रकार की समीक्षाए लिखी है। शुक्ल जी के निबन्ध 'चिन्तामणि' भाग-1 एवं भाग-2 तथा 'विचारवीथी' में संकलित है। आपने सूरदास, तुलसीदास एवं जायसी के काव्य पर भी समीक्षाए की है। आपके द्वारा लिखा गया 'हिंदी साहित्य का इतिहास (1929)' एक श्रेष्ठ ग्रंथ है।

शुक्ल जी का भाषा पर बहुत ही बेजोड़ अधिकार था। उनकी भाषा शुद्ध, परिष्कृत एवं मानक हिंदी है। शुक्ल जी का सम्पूर्ण साहित्य हिंदी जगत के लिए एक अनमोल रत्न के समान है। इनके निबन्ध हिन्दी निबन्ध कला के निकर्ष है। इस प्रकार हम पाते हैं कि शुक्ल जी बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार है। इन्होंने साहित्य के सभी क्षेत्रों में अपनी लेखनी चलाई है।

3.4 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित महत्वपूर्ण बिन्दु निष्कर्ष के रूप में प्राप्त हुए हैं।

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एक बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार माने जाते हैं।
2. शुक्ल जी को हिन्दी साहित्य का गौरव कहा जाता है।
3. वे नागरी प्रचारणी सभा के आग्रह पर "हिंदी शब्द सागर" के संपादन का कार्य भार सम्भाला।
4. शुक्ल जी कुशल आलोचक, श्रेष्ठ निबन्धकार निष्पक्ष इतिहासकार तथा महान शैलीकार आचार्य माने जाते हैं।
5. शुक्ल जी एक कुशल अनुवादक भी थे।

6. इनके निबन्ध अधिकतर विचार प्रधान होते थे।

7. आचार्य शुक्ल को हिंदी के मनोवैज्ञानिक निबंध लेखन परम्परा का जनक माना जाता है।

8. आचार्य शुक्ल कृत 'हिंदी साहित्य का इतिहास' को आज भी एक विशिष्ठ स्थान प्राप्त है।

3.5 शब्द संपदा

संपादन	-	एडिटिंग
सहायक	-	मददगार
विशुद्ध	-	सच्चा, पवित्र
साहित्यिक	-	
परिनिष्ठत	-	पुर्ण कुशल
चमत्कार	-	करिश्मा
प्रौढ़	-	अनुभवी, कुशल

4.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खण्ड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की आलोचना दृष्टि पर प्रकाश डालिए।

2. आचार्य शुक्ल के निबन्धकला की विवेचना कीजिए।

3. आचार्य रामचन्द्र के रचना संसार पर प्रकाश डालिए।

खण्ड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. हिन्दी साहित्य में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के व्यक्तित्व का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के व्यक्तित्व का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

3. शुक्ल जी की भाषा शैली पर प्रकाश डालिए।

खण्ड (स)

। सही विकल्प चुनिए

1. 'मनोविकार सम्बन्धी निबंध' इनमें से किस लेखक ने लिखे हैं?

(क) हरिशंकर परसाई (ख) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

(ग) हजारी प्रसाद द्विवेदी (घ) प्रतापनारायण मिश्र

2. आचार्य शुक्ल का निबंध संकलन इनमें से कौन सा है?

(क)विचार और विकारण्र (ख)रस आरवेटक

(ग) चिन्तामणि (घ) रसज्ञरंजन

3. आचार्य शुक्ल की समीक्षा-दृष्टि मूलतः किससे प्रभावित है?

(क)सूरसागर से (ख) पद्मावत से

(ग) रामचरितमानस से (घ) विनयपत्रिका से

।। रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. आचार्य शुक्ल जी का जन्म सन् .... में हुआ था।

2. आचार्य शुक्ल जी के निबंध .... में संकलित है।

3. शुक्ल जी ने काव्य को कर्मयोग एवं ज्ञानयोग के समकक्ष रखते हुए ...... कहा है।

III सुमेल कीजिए

(1) मानस की धर्म भूमि — (क) आलोचनात्मक

(2) ग्यारह वर्ष का समय — (ख) निबंध

(3) रस मीमांसा — (ग) कहानी

(4) शशांक — (घ) अनुदित कृति

4.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहासा , (सं.) नगेंद्र और हरदयाल
2. हिंदी का गद्य साहित्य, रामचंद्र तिवारी
3. हिंदी साहित्य का संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी
4. हिंदी साहित्य का नवीन इतिहास, लाल साहब सिंह
5. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास, बच्चन सिंह
6. हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - गणपति चन्द्र गुप्त
7. हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल

इकाई - 4 'करुणा' :समीक्षात्मक अध्यन

रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उदेश्य

4.3 मूल पाठ : 'करुणा' समीक्षात्मक अध्यन

4.3.1 हिन्दी निबंध का विकास क्रम

4.3.2 भारतेन्दु युग

4.3.3 द्विवेदी युग

4.3.4 शुक्ल युग

4.3.5 शुक्लोत्तर युग

4.3.6 करुणा निबंध की समीक्षा (मूल पाठ)

4.4 पाठ सार

4.5 पाठ की उपलब्धिया

4.6 शब्द सम्पदा

4.7 परीक्षार्थ प्रश्न

4. 8 पठनीय पुस्तकें

4.1 प्रस्तावना

निबंध उस गद्य रचना को कहते हैं जिसमें लेखक किसी विषय पर अपने विचारों को स्वच्छंद रूप में इस प्रकार व्यक्त करता है कि सारी रचना एक सूत्र में बंधी हुई प्रतीत होती है।

हिन्दी की अन्य गद्य विधाओं के समान हिन्दी निबंध का विकास भी भारतेन्दु युग से प्रारंभ हुआ। इस काल में भारतीय समाज में एक नई चेतना का विकास हो रहा था। पढ़े-लिखे लोग अपने विचारों को स्वच्छंतापूर्वक व्यक्त करने लगे थे। इस समय तक हिन्दी की अनेक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगी थी, जिनमें 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका', 'उदंत मार्तण्ड', 'ब्राह्मण प्रदीप', 'बनारस अखबार', 'सार-सुधानिधि' आदि महत्वपूर्ण थी। इन समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं में विविध विषयों पर जो विचार व्यक्त किए जाते थे, उन्हें ही हिन्दी निबंध का प्रारंभिक रूप कहा जा सकता है।

चिन्तामणि आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा रचित निबंधों का संकलन है| चिन्तामणि भाग 1 के निबन्ध ही शुक्ल जी की निबन्ध कला का परिचय देने के लिए पर्याप्त है | करुणा एक मनोविकार सम्बन्धी निबंध है|

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ में मूर्धन्य आलोचक आचार्य रामचन्द्र 'शुक्ल' के निबंध 'करुणा' पर प्रकाश डाला गया है। इस निबंध के अध्ययन से आप :

- करुणा के विभिन्न रूपों पर प्रकाश डाल सकेंगे।

- सामाजिक जीवन के लिए करुणा की आवश्यकता पर विचार कर सकेंगे।
- करुणा की उत्तमता पर विचार कर सकेंगे।
- उसके उद्देश्य पर मनन कर सकेंगे।

4.3 मूल पाठ : करुणा : समीक्षात्मक अध्यन

4.3.1 हिंदी निबंध का विकास क्रम

हिन्दी निबंध के विकास को चार कालों में विभक्त किया जा सकता है-

4.3.2 भारतेन्दु युग

भारतेन्दु युग को हिन्दी निबंध की विकास यात्रा का प्रारंभिक चरण माना जा सकता है। भारतेन्दु जी के निबंध ही हिन्दी के प्राथमिक निबंध हैं, जिनमें निबंध कला की मूलभूत विशेषताएँ उपलब्ध होती हैं। भारतेन्दु ने हिन्दी गद्य की अनेक विधाओं का न केवल सूत्रपात किया अपितु उन्हें पल्लवित करने का श्रेय भी उन्हें ही प्राप्त है। भारतेन्दु जी के निबंध विषय एवं शैली की दृष्टि से विविधतापूर्ण हैं। उन्होंने इतिहास, समाज, धर्म, राजनीति, यात्रा, प्रकृति वर्णन एवं व्यंग्य विनोद जैसे विषयों पर निबंधों की रचना की। भारतेन्दु युग के प्रमुख निबंधकारों में स्वयं भारतेन्दु बाबू, हरिश्चन्द्र के अतिरिक्त बालकृष्ण भट्ट, बालमुकुन्द गुप्त, राधाचरण गोस्वामी, अम्बिकादत्त व्यास आदि उल्लेखनीय हैं। इन निबंधकारों ने भी हिन्दी निबंध के विकास में पर्याप्त योगदान किया है।

बोध प्रश्न

1 भारतेंदु ने किन -किन विषयों पर निबन्ध लिखा ?

4.3.3 द्विवेदी युग

हिन्दी निबंध के विकास के द्वितीय चरण को आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर द्विवेदी युग कहा गया है। द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' पत्रिका का सम्पादकत्व सन् 1903 ई. में संभाला था, अत: द्विवेदी युग का प्रारंभ हम इसी समय से मान सकते हैं। दिवेदी जी ने सरस्वती के माध्यम से भाषा संस्कार एवं व्याकरण शुद्धि के जो प्रयास प्रारंभ किए उनका प्रभाव तत्कालीन सभी निबंधकारों पर किसी न किसी रूप में अवश्य पड़ा।

द्विवेदी ने 'बेकन' के निबंधों को आदर्श निबंध मानते हुए उनके निबंधों का हिन्दी अनुवाद 'बेकन विचार रत्नावली' के नाम से किया। इसके अतिरिक्त उनके अपने निबंधों का संग्रह 'रसज्ञ रंजन' नाम से प्रकाशित हुआ है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि द्विवेदी युग में विचार प्रधान निबंधों की रचना अधिक हुई है। भारतेन्दु युग की अपेक्षा इस युग के निबंधकारों की भाषा शैली में प्रौढ़ता दिखाई पड़ती है। इन निबंधकारों ने युगीन समस्याओं की अपेक्षा साहित्यिक एवं वैचारिक समस्याओं पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हुए निबंधों के विषयों की खोज की। हास्य व्यंग्य के स्थान पर इनमें गंभीरता अधिक है।

बोध प्रश्न

2 दिव्वेदी जी ने किसके निबन्धों आदर्श मानकर अपने निबन्धों की रचना की ?

4.3.4 शुक्ल युग

हिन्दी निबंध के तृतीय चरण को शुक्ल युग की संज्ञा प्रदान की गई है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंध क्षेत्र में पदार्पण करने से इसे नए आयाम एवं नई दिशाएँ प्राप्त हुईं। उन्होंने 'चिंतामणि' में जो निबंध संकलित किए हैं उनसे हिन्दी निबंध अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिखाई पड़ता है। वस्तुत: निबंध कला के सभी गुण इनके निबंधों में उपलब्ध होते हें। शुक्ल जी ने विषयानुरूप सभी शैलियों का प्रयोग किया है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि शुक्ल युग हिन्दी निबंध के विकास का 'स्वर्ण युग' है। इस युग में निबंधों का विषय क्षेत्र अधिक व्यापक हुआ। साथ ही उसमें गंभीरता एवं सूक्ष्मता भी आई। ये निबंध मनोविज्ञान, साहित्य, संस्कृत, इतिहास सभी विषयों को समाविष्ट किए हुए है। भाषा शैली की दृष्टि से यह युग द्विवेदी युग की तुलना में अधिक विकसित एवं प्रौढ़ है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल इस युग की महानतम उपलब्धि हैं और वे हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ निबंधकार कहे जाते हैं।

बोध प्रश्न

3 शुक्ल युग को निबन्धों के माध्यम से सवर्ण युग क्यों कहा जाता है ?

4.3.5 शुक्लोत्तर युग

शुक्ल जी ने हिन्दी निबंध को जो नए आयाम दिए उससे हिन्दी निबंध का परवर्तीकाल में विविधमुखी विकास हुआ। विषय, क्षेत्र, वैचारिकता, भाषा शैली सभी दृष्टियों से हिन्दी निबंध ने नई दिखाएं खोजी। इस काल में न केवल समीक्षात्मक और विचारात्मक निबंधों की ही रचना हुई अपितु ललित निबंधों की भी पर्याप्त रचना हुई। शुक्लोत्तर निबंधकारों में आचार्य हजारी प्रसाद, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ. नगेन्द्र, रामधारी सिंह दिनकर, जयशंकर प्रसाद, इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र, प्रभाकर माचवे, डॉ. भगीरथ मिश्र, डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. विद्यानिवास मिश्र आदि उल्लेखनीय है

बोध प्रश्न

शुक्ल काल के बाद किस प्रकार के निबन्धों की रचना होने लगी ?

4.3.6 करुणा निबंध की समीक्षा

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का प्रमुख निबंध करुणा साहित्यिक निबंध है| इसमें भारतीय विचारकों के अतिरिक्त पाश्चात्य विद्वानों के विचारों का भी अध्यन किया गया है | पाश्चात्य विचारकों के अनुसार समर्थ व्यक्ति में ही करुणा संचारित होती है | किन्तु भारतीय विद्वानों के अनुसार दीन दुखी एवं अपाहिज ओं द्वारा करुणा का अंकुर उत्पन्न किया जाता है| ऐसा व्यवहारिक जीवन में देखा जा सकता है

जिस समय बच्चे को कार्य और कारण के संबंध का ज्ञान होने लगता है तब दुख के उस रूप की नीव पड़ती है , जिसे करुणा कहते है | तब दुःख का स्रोत

निर्मित होता है यही दुख करुणा में परिणित होता है| करुणा का आधार दुःख ही है | करुणा शारीरिक और मानसिक दो प्रकार की होती है |वियोग में भी करुणा देखी जाती हैं | करुणा क्रोध का विपरीत मनोभाव है| करुणा में दया का अंश होता है जबकि क्रोध में हानि की चेष्टा की जाती है सात्विक भाव की उत्पत्ति करुणा से होती है| करुणा करने वाला अन्य व्यक्तियों के लिए श्रद्धा का पात्र बनता है|

इसी प्रकार हम देखतें है की करुणा एवं सहानुभूति में भी अंतर है| निजी व्यक्तियों के दुःख और अन्य व्यक्तियों के दुखों के प्रति दिखाए गई करुणा सहानुभूति कहलाती है| दुःख से उत्पन्न मनोभाव में करुणा के पात्र को कभी हानि नहीं पहुंचाई जाती , भले ही उसमें संबंधित अन्य किसी को हानि का सामना करना पड़े |

क्रोध करुणा का विपरीत भाव है |क्रोध में दुसरे को हानि पहुचाने का काम किया जाता है , और करुणा में भलाई का |जिस व्यक्ति से मन प्रसन होता है , उसके दुःख से दुखी होकर करुणा की जाती है |लोभी व्यक्ति उस व्यक्ति या वस्तु को कभी हानि नहीं पहुचाता जिससे उसे लाभ की आशा हो |भले ही उस से संबंधित अन्य को हानि पहुंचा दे| जैसे सोमनाथ के मंदिर को महमूद गजनवी ने नष्ट किया परंतु उसने जो हीरे जवाहरात उस मंदिर में पाए उसे संभाल कर रखा |

करुणा दुख का आधार है ----- ज्यों-ज्यों मनुष्य सामाजिक संबंध स्थापित करता चला जाता है | त्यों-त्यों उसके जीवन का क्षेत्र तथा मनोविकारओ के

प्रवाह का क्षेत्र विस्तृत होता चला जाता है | वह समाज के व्यक्ति के क्रियाकलापों से प्रभावित होता है | उनके सुख दुख में सुखी दुखी होने लगता है किंतु सुख की अपेक्षा दुख अधिक व्यापक विस्तृत तथा प्रभावशाली है | हम दूसरों के दुख से दुखी हो सकते हैं उसके सुख से सुखी नहीं | करुणा के लिए दुख के अतिरिक्त किसी विशेषता की अपेक्षा नहीं पर आनंदित हम ऐसे ही व्यक्ति के सुख को देखकर होते हैं जो सहृदय है या संबंधी है अथवा अत्यंत सज्जन शालीन चरित्रवान समाज का मित्र अथवा हितेषी है |

दूसरों के दुख से दुखी होने वाले दुख को करुणा या दया आदि का नाम दिया गया है, किन्तु दूसरों के सुख से सुखी होने पर किसी अन्य मनोवेग का नाम नहीं दिया जाता, क्योंकि इसमें वेग या क्रियोत्पादाकता नहीं| करुणा उत्पन्न होने के पश्चात कारण को दूर करने की प्रेरणा मन में जागृत होती है|

करुणा आदि मनोविकार शील और सात्विकता के संस्थापक हैं- मनुष्य की सज्जनता और दुर्ज्जनता का ज्ञान अन्य प्राणियों के संसर्ग द्वारा ही व्यक्त होता है | जीवन का उद्देश्य सुख की स्थापना और दुख का निवारण है| अतः जिन कर्मों या साधनों से इस उद्देश्य की पूर्ती हो, वे उत्तम है, शुभ हैं तथा सात्विक है | कृपा अथवा प्रसन्नता द्वारा दूसरे के सुख की कल्पना की जाती हैं परंतु कृपा और प्रसन्नता में आत्माभाव की कमी होती है | अतः आत्मभाव की प्रेरणा से पहुंचाया गया सुख एक प्रकार का प्रतिकार है| इसके अतिरिक्त नवीन सुख को प्राप्त करने की अपेक्षा दुःख की निवृत्ति की इच्छा अधिक तीव्र होती है|

करुणा एक मनोविकार है - वह तीव्र अनुभूति जो दूसरों के दुःख को देखकर उत्पन होती है, मनोविकार के अंतर्गत आती है| करुणा एक मनोविकार है हमारा आचरण यदि ऐसे क्रियाकलापों से बचता चलें जिनसे किसी को दुख या कष्ट पहुंचने की आशंका है तो यह शील के अंतर्गत आएगा प्रचलित भाषा में शील का अर्थ कोमलता या प्रेम से लिया जाता है जैसे उनकी आंखों में शील नहीं शील तोड़ना अच्छा नहीं |उद्दात्त भावनाओं की रक्षा हेतु तोड़ा गया नियम दोष के अंतर्गत स्वीकार नहीं किया जाता है| उदाहरण के लिए किसी असहाय या पीड़ित व्यक्ति को अनुचित दंड मिलने पर बोला गया झूठ दोष नहीं है | करुणा से सात्विक भावनाओं की जननी है | जैन और बौद्ध धर्म में करुणा की प्रधानता है करुणा से सात्विक वृतियों की उत्पत्ति होती है | गोस्वामी तुलसीदास जी का भी यही कथन है|

परहित सरिस धर्म नहीं भाई |

पर- पीड़ा सम नहि अधभाई ||

करुणा का श्रद्धा व सात्विक शीलता से संबंध है --- श्रद्धा किसी ना किसी रूप में सात्विक शीलता ही है | सात्विकता का करुणा से संबंध है| अतः श्रद्धा और करुणा में भी निकटता हुई | किसी पुरुष को दूसरे पर करुणा करना करते देख कर तीसरे व्यक्ति के मन में भी करुणा करने वाले के प्रति श्रद्धा का भाव बढ़ेगा |

अंत:करण की सारी वृतियों मनोवेगों की सहायक है -------- मनुष्य का आचरण मनोवेग या प्रवृति ही का फल है | कुछ दार्शनिकों ने कहा है कि हमारे निश्चयो का अंतिम आधार बुधि नहीं अनुभव व कल्पना की तीव्रता है |

प्रिय के वियोग में करुणा का स्वरूप ----- प्रिय के वियोग में ह्रदय में जो पीड़ा होती है वह करुणा कहलाती है क्योंकि उसमें भी दया और करुणा का भाव सम्मिलित रहता है इस प्रकार की करुणा प्रिय की अनुपस्थिति में होने वाले सुख के अभाव द्वारा उत्पन्न होती है भगवान राम के वनवास के समय में मां कौशल्या के दुःख से दुखी होना इस भाव के अंतर्गत आता है |

वन को निकरि गए दौउ भाई

सावन बरसे भादवो बरसे पवन चलै पुरवाई

कोऊ बिरिछ तर भीजत है ,राम लखन दौउ भाई

दूसरों के दुख से दुखित होने वाले दुख को करुणा या दया आदि का नाम दिया गया है, किन्तु दूसरों के सुख से सुखी होने पर किसी अन्य मनोवेग का नाम नहीं दिया जाता क्योंकि इसमें वेग या क्रियोत्पादाकता नहीं| करुणा उत्पन्न होने के पाश्चात कारण को दूर करने की प्रेरणा मन में जागृत होती है|

<u>करुणा आदि मनोविकार शील और सात्विकता के संस्थापक हैं</u> मनुष्य की सज्जनता और दुर्जनता का अन्य प्राणियों के संसर्ग द्वारा ही व्यक्त होता है| जीवन का उद्देश्य सुख की स्थापना और दुख का निवारण है, अतः जिन कर्मों

या साधनों के इस उद्देश्य के पूर्ती हो वे उत्तम है, शुभ हैं तथा सात्विक है | कृपा अथवा प्रशंसा द्‌वारा दूसरे के सुख की कल्पना की जाती हैं परंतु कृपा और प्रसन्नता में आत्माभाव लुप्त रहता है| अतः आत्मभाव की प्रेरणा से पहुंचाया गया सुख एक प्रकार का प्रतिकार है| इसके अतिरिक्त नवीन सुख को प्राप्त करने की अपेक्षा दुःख की निवृत्ति की इच्छा अधिक तीव्र होती है|

करुणा में प्रतिकार की इच्छा नहीं होती करुणा करने वाले के हृदय में बदले की भावना नहीं होती| करुणा का करता यह नहीं चाहता की उसके प्रति भी करुणा की जाए अथवा किसी लाभ यह हित को पहुंचाने की चेष्टा की जाए | करुणा तो प्रतिकाररहित होती है| करुणा करने वाले के प्रति श्रद्धा, कृतज्ञता अथवा प्रेम उत्पन्न हो सकता है| क्रोध आदि मनोवेगों के प्रति श्रद्धा या प्रेम की जागृति कभी नहीं होती |

मानव जीवन की सजीवता मनोवेगों पर निर्भर है मनुष्य की सजीवता मनोवेग व प्रवृत्ति में ही है| नीतिज्ञों एवं धार्मिकों का मनोवेगों को दूर करने का उद्देश्य कोरा पाखंड है| शुक्ल जी ने इस विषय में सच्चा प्रयत्न किया है| वे मनोविकारों को परिष्कृत एवं परिमार्जित करने को परामर्श देते हैं, नष्ट करने का नहीं| स्मृति, अनुमान और बुद्धि के अतिरिक्त मनोवेगों का होना अनिवार्य है| इनके अभाव में मनुष्य जड़ एवं निर्जीव जान पड़ता है| दिन प्रतिदिन बदलती सभ्यता और जीवन के प्रभाव मनुष्य के मनोव्यगों को शक्तिहीन बनाते जा रहे हैं| इसी कारण वास्तविक आनंद का अभाव सा होता जा रहा ह| प्राकृतिक सौंदर्य में भी मानव के मन को अधिक नहीं मोहता| उसे कृतिमता

अधिक भाति हैं| दुराचार, अनाचार एवं अत्याचार में उसे घृणा तो है किंतु शिष्टाचार के नाते तथा परिस्थितियों के दबाव के कारण उसे चुप रहना पड़ता है अथवा दुर्जन व्यक्ति की प्रशंसा करनी पड़ती है| अंतः करण की भावुकता दिन प्रतिदिन लोप होती जा रहे हैं| हृदयगत उद्गार मन ही मन में दबे रह जाते हैं मनुष्य को उदात एवं मानवीय भावनाओं की अवहेलना करके क्रूर आवश्यकताओं के हाथों की कठपुतली बनना पड़ता है| अपने सुख की इच्छा से दूसरों की आंखों में धूल झोंकने पड़ती है| समाज में जीवित रहने के लिए दिखावा करना पड़ता है| आधुनिक भौतिकवादी युग में विवाश्यता सबसे बड़ा भूत है, जिसके वशीभूत होने पर मानव को सब कुछ करने को तैयार रहना पड़ता है, भले ही वह उचित हो अथवा नियम भंग|

ऐसा मानना है कि जीवन के लिए मनोव्यगों की उपस्थिति अनिवार्य है| इनसे रहित जीवन रसहीन है| नियम आवश्यकता और न्याय मनोव्यगों के बाधक है, साधक नहीं| इन तीनो के जाल में फसने पर मानव को अपने मनोविकारों का हनन करना पड़ता है| आचार रामचंद्र शुक्ल के अनुसार करुणा समाज की पुष्टता एवं कल्याण के लिए आवश्यक मनोवेग है|

जब बच्चे को संबंध-ज्ञान कुछ-कुछ होने लगता है तभी दु:ख से उस भेद की नींव पड़ जाती है, जिसे करुणा कहते हैं। बच्चा पहले परखता है कि जैसे हम हैं वैसे ही ये और प्राणी भी हैं और बिना किसी विवेचना-क्रम के स्वाभाविक प्रवृत्ति द्वारा, वह अपने अनुभवों का आरोप दूसरे प्राणियों पर करता है, फिर कार्य-कारण-संबंध से अभ्यस्त होने पर दूसरों के दु:ख के कारण या कार्य को

देखकर उसके दु:ख का अनुमान करता है और स्वयं एक प्रकार का दु:ख अनुभव करता है। प्राय: देखा जाता है कि जब माँ झूठ-मूठ 'ऊँ-ऊँ' करके रोने लगती है तब कोई-कोई बच्चे भी रो पड़ते हैं। इसी प्रकार जब उनके किसी भी भाई या बहन को कोई मारने उठता है तब वे कुछ चंचल हो उठते हैं।

दु:ख की श्रेणी में प्रवृत्ति के विचार से करुणा का उल्टा क्रोध है। क्रोध जिसके प्रति उत्पन्न होता है उसकी हानि की चेष्टा की जाती है। करुणा जिसके प्रति उत्पन्न होती है उसकी भलाई का उद्योग किया जाता है। किसी पर प्रसन्न होकर भी लोग उसकी भलाई करते हैं। इस प्रकार पात्र की भलाई की उत्तेजना दु:ख और आनंद दोनों की श्रेणियों में रखी गई है, आनंद की श्रेणी में ऐसा कोई शुद्ध मनोविकार नहीं है, जो पात्र की हानि की उत्तेजना करे, पर दु:ख की श्रेणी में ऐसा मनोविकार है जो पात्र की भलाई की उत्तेजना करता है, लोभ से, जिसे मैंने आनंद की श्रेणी में रखा है, चाहे कभी-कभी और व्यक्तियों या वस्तुओं को हानि पहुँच जाए पर जिसे जिस व्यक्ति या वस्तु का लोभ होगा, उसकी हानि वह कभी न करेगा |

ऊपर कहा जा चुका है कि मनुष्य ज्यों ही समाज में प्रवेश करता है, उसे सुख और दु:ख का बहुत-सा अंश दूसरे की क्रिया या अवस्था पर अवलंबित हो जाता है और उसके मनोविकारों के प्रवाह तथा जीवन के विस्तार के लिए अधिक क्षेत्र हो जाता है। वह दूसरों के दु:ख से दु:खी और दूसरों के सुख से सुखी होने लगता है। अब देखना यह है कि दूसरों के दु:ख से दु:खी होने का

नियम जितना व्यापक है क्या उतना ही दूसरों के सुख से सुखी होने का भी। मैं समझता हूँ, नहीं, हम अज्ञात-कुल-शील मनुष्य के दु:ख को देखकर भी दु:खी होते है। किसी दु:खी मनुष्य को सामने देख हम अपना दु:खी होना तब तक के लिए बंद नहीं रखते जब तक कि यह न मालूम हो जाए कि वह कौन है, कहाँ रहता है और कैसा है। यह बात है कि यह जानकर कि जिसे पीड़ा पहुँच रही है उसने कोई भारी अपराध या अत्याचार किया है। हमारी दया दूर या कम हो जाए, ऐसे अवसर पर हमारे ध्यान के सामने वह अपराध या अत्याचार आ जाता है और उस अपराधी या अत्याचारी का वर्तमान क्लेश हमारे क्रोध की तुष्टि या साधक हो जाता है।

सारांश यह है कि करुणा की प्राप्ति के लिए पात्र में दु:ख के अतिरिक्त और किसी विशेषता की अपेक्षा नहीं, पर आनंदित हम ऐसे ही आदमी के सुख को देखकर होते हैं जो या तो हमारा सुहृद या संबंधी हो अथवा अत्यंत सज्जन, शीलवान या चरित्रवान होने के कारण समाज का मित्र या हितकारी हो, यों ही किसी अज्ञात व्यक्ति का लाभ या कल्याण सुनने से हमारे हृदय में किसी प्रकार के आनन्द का उदय नहीं होता, इससे प्रकट है कि दूसरों के दु:ख से दु:खी होने का नियम बहुत व्यापक है और दूसरों के सुख से सुखी होने का नियम उसकी अपेक्षा परिमित है। इसके अतिरिक्त दूसरों को सुखी देखकर जो आनन्द होता है उसका न तो कोई अलग नाम रखा गया है और न उसमें वेग या प्रेरणा होती है, पर दूसरों के दु:ख के परिज्ञान से जो दु:ख होता है, वह करुणा, दया आदि नामों से पुकारा जाता है और अपने कारण को दूर करने की उत्तेजना करता है।

प्रिय के वियोग से जो दु:ख होता है उसमें कभी-कभी दया या करुणा का भी कुछ अंश मिला रहता है। ऊपर कहा जा चुका है कि करुणा का विषय दूसरे का दु:ख है। अत: प्रिय के वियोग में इस विषय की भावना किस प्रकार होती है, यह देखना है। प्रत्यक्ष निश्चित कराता है और परोक्ष, अनिश्चय में डालता है। प्रिय व्यक्ति के सामने रहने से उसके सुख का जो निश्चय होता रहता है, वह उसके दूर होने से अनिश्चय में परिविर्तत हो जाता है। अत: प्रिय के वियोग पर उत्पन्न करुणा का विषय प्रिय के सुख का निश्चय है, जो करुणा हमें साधारण जनों के वास्तविक दु:ख के परिज्ञान से होती है, वही करुणा हमें प्रियजनों के सुख के अनिश्चय मात्र से होती है। साधारण जनों का तो हमें दु:ख असह्य होता है, पर प्रियजनों के सुख का अनिश्चय ही, अनिश्चय बात पर सुखी या दु:खी होना ज्ञानवादियों के निकट अज्ञान है। इसी से इस प्रकार के दु:ख का करुणा को किसी-किसी प्रांतिक भाषा में 'मोह' भी कहते हैं। सारांश यह कि प्रिय से वियोग-जनित दु:ख में जो करुणा का अंश रहता है उसका विषय प्रिय के सुख का अनिश्चय है। राम-जानकी के वन चले जाने पर कौशल्या उनके सुख के अनिश्चय पर इस प्रकार दु:खी होती हैं -

बन को निकरि गए दोउ भाई।

सावन गरजै, भादौं बरसै, पवन चलै पुरवाई।

कौन बिरिछ तर भीजत है हैं राम लखन दोउ भाई (...गीता.)

जिस व्यक्ति से किसी की घनिष्ठता और प्रीति होती है वह उसके जीवन के बहुत से व्यापारों तथा मनोवृत्तियों का आधार होता है। उसके जीवन का बहुत-सा अंश उसी के संबंध द्वारा व्यक्त होता है। मनुष्य अपने लिए संसार आप बनाता है। संसार तो कहने-सुनने के लिए है। वास्तव में किसी मनुष्य का संसार तो वे ही लोग हैं जिनमें उसका संसर्ग या व्यवहार है। अत: ऐसे लोगों में से किसी का दूर होना उसके संसार के एक प्रधान अंश का कट जाना या जीवन के एक अंश का खंडित हो जाना है। किसी प्रिय या सहृदय के चिरवियोग या मृत्यु के शोक के साथ करुणा या दया का भाव मिलकर चित्त को बहुत व्याकुल करता है। किसी के मरने पर उसके प्राणी उसके साथ किए हुए अन्याय या कुव्यवहार तथा उसकी इच्छा-पूर्ति करने में अपनी त्रुटियों का स्मरण कर और यह सोचकर कि उसकी आत्मा को संतुष्ट करने की भावना सब दिन के लिए जाती रही, बहुत अधीर और विकल होते हैं।

करुणा अपना बीज अपने आलंबन या पात्र में नहीं फेंकती है अर्थात जिस पर करुणा की जाती है वह बदले में करुणा करने वाले पर भी करुणा नहीं करता, जैसा कि क्रोध और प्रेम में होता है, बल्कि कृतज्ञ होता अथवा श्रद्धा या प्रीति करता है। बहुत सी औपन्यासिक कथाओं में यह बात दिखाई गई है कि युवतियाँ दुष्टों के हाथ से अपना उद्धार करने वाले युवकों के प्रेम में फँस गई हैं। कोमल भावों की योजना में दक्ष बँगला के उपन्यास-लेखक करुणा और प्रीति के मेल से बड़े ही प्रभावोत्मादक दृश्य उपस्थित करते हैं।

यह ठीक है कि मनोवेग उत्पन्न होना और बात है और मनोवेग के अनुसार व्यवहार करना और बात, पर अनुसारी परिणाम के निरंतर अभाव के मनोवेगों का अभ्यास भी घटने लगता है। यदि कोई मनुष्य आवश्यकतावश कोई निष्ठुर कार्य अपने ऊपर ले ले तो पहले दो-चार बार उसे दया उत्पन्न होगी, पर जब बार-बार दया की प्रेरणा के अनुसार कोई परिणाम वह उपस्थित न कर सकेगा तब धीरे-धीरे उसका दया का अभ्यास कम होने लगेगा, यहाँ तक कि उसकी दया की वृत्ति ही मारी जाएगी।

सामाजिक पूर्णता के लिए करुणा का क्षेत्र विस्तृत होना चाहिए करुणा का प्रचार और प्रसार परम आवश्यक है इस भाव से सहयोग सहानुभूति दया क्षमा दया और परोपकार जैसी उदास भावनाओं का जन्म होता है पश्चात दार्शनिक करना हो स्वार्थी भाव विषय में रखते हैं , यह अनुचित है क्योंकि ध्वनि की विशेषता होती तो करुणा का भाव दीक्षित श्रीपद दलित के प्रति ना होता जिसे किसी प्रकार की रक्षा अथवा हिचकी आशा नहीं ही जा सकती अनाथ पर अत्याचार हो तो करुणा से अपना होता है मन करुणा की तरंगों से उमड़ पड़ता है किंतु इतनी करुणा उस समय पर नहीं होती जब कोई पहलवान पीट रहा हो| समाज के कल्याण और जीत के लिए करुणा जैसी संस्कृतियों या मनोवेगों का होना अनिवार्य है| समाज ऐसी वृत्तियों से ही पूर्ण और सुरक्षित बनता है|

हम कह सकते हैं कि करुणा की श्रेणी का अनुभव है तात्पर्य है मनोभावों को अगर दुख और सुख दो बाजारों पर बाटा जाए तो करुणा का मनोविकार सुख की श्रेणी में आएगा करुणा किसी ऐसे व्यक्ति पर की जाती है जो दुखी हो

घायल दिमाग दुखी और विलाप करते हुए व्यक्ति पर देखने वाले के मन में करना उत्पन्न हो जाती हैं करना करने वाले को भी दुखी हो देखकर और उस पर करुणा करते समय दुख ही होता है किसी की दुर्दशा देखकर किसी की दुर्दशा देखकर जब हमारा हृदय बिगलीप हो जाता है द्रवित हो जाता है तभी हम किसी पर करो ना या दया करते हैं आचार्य शुक्ल जी ने करुणा और क्रोध दोनों ही मनोभावों को समाज की स्थिति और सामाजिक जीवन की निर्वाह के लिए आवश्यक माना है

अतः

बोध प्रश्न

5 करुणा का उलटा किस विकार को माना गया है ?

4.4 पाठ सार

करुणा निबंध में शुक्ल जी ने करुणा के मनोभाव का विश्लेषण किया है। शुक्ल जी का अनुभव था कि सुख-दुख की मूल अनुभूतियाँ ही विषय भेद से प्रेम, ह्रास, उत्साह, आश्चर्य, क्रोध, भय, करुणा, घृणा आदि ही मनोविकारों का रूप धारण करते हैं। ये मनोविकार अत्यंत महत्वपूर्ण होते हैं। करुणा दु:ख की अनुभूति का एक प्रकार है। क्रोध भी दु:ख की अनुभूति में ही गिना जा सकता है किन्तु उसका परिणाम करुणा से विपरीत होता है। क्योंकि क्रोध जिसके प्रति उत्पन्न होता है उसकी हानि की चेष्टा की जाती है। करुणा जिसके प्रति उत्पन्न

होता है उसकी भलाई का उद्योग किया जाता है। इस प्रकार करुणा के भात के मूल में पात्र की भलाई की उत्तेजना की भूमिका होती है।

निबंध में मात्र तीन ऐसे अवसरों को आचार्य शुक्ल रेखांकित करते हैं जिनमें मनोवेग, विशेषकर करुणा का महत्व घट जाता है। ये अवसर हैं आवश्यकता, नियम और न्याय। ये ऐसी स्थितियाँ हैं जहाँ करुणा व्यवस्था और कर्तव्य के मार्ग में बाधक बनती है। अत: उसकी भूमिका गौण हो जाती है। फिर भी इन तीनों परिस्थितियों में यदि संबंधित व्यक्ति के दु:ख से करुणा उत्पन्न होती है तो दु:खी व्यक्ति के दु:ख को व्यक्तिगत स्तर पर दूर किया जा सकता है क्योंकि करुणा का द्वार तो सबके लिए खुला है|

करुणा समाज के कल्याण का आधार है करुणा श्रीमद् भागवत कथा प्रेम को जागृत करते हैं यह सब मानव समाज की स्थिति और दृढ़ता के आरंभ है इसमें समाज जीवित और स्थिर रहता है इन्हीं शक्तियों से समाज पुण्याचा को प्राप्त करता है अतः करुणा का समाज में होना खींचकर है समाज की भलाई इसी करुणा पर निर्भर है दूसरों के दुख में दुखी होना करना कहलाता है करुणा से सीन दया क्षमा कराड परहित श्रद्धा जैसे उरदा भावनाओं का जन्म होता है जिन्हें सद्विद्या या सात्विक ज्योति कृतियां कहते हैं स्पष्ट हाय जी सात्विक गुणों का दिव्य प्रकाश करने वाली यही करना है यही करुणा है यह सात्विक ज्योति मानव के अंतःकरण में सदैव विराजमान रहते हैं यह मानव को पशुता दो से भूल कर के उससे मानवीय गुणों से उसे भूत प्रेत करती हैं अपना सामान जैसे महान बनाती है |

हम जानते हैं कि मामा की सजीव का का आधार महोबे है मन्नू बेगू से रहित जीवन वसीम है इनकी आंखों में जीवन जल एवं निर्जीव है करुणा और शक्तियों का जन्म होता है करुणा श्रद्धा प्रेम और कृतज्ञता दया दया आदि कृतियों की जन्म दात्री है हम विकार ही शालीनता और सात्विकता की स्थापना तथा निर्माण करने वाले हैं |

4.5 पाठ की उपलब्धियां

इस इकाई के अध्यन से निम्नलिखित महत्वपूर्ण बिंदु निष्कर्ष के रूप में प्राप्त हुए हैं |

1 आचार्य रामचंद्र शुक्ल एक प्रसिद्ध निबंधकार और हिंदी साहित्य के इतिहासकार के रूप में जाने जाते हैं |

2 सामाजिक जीवन के लिए करुणा की क्या आवश्यकता है उसको जान सकतें हैं

3 करुणा का सामाजिक जीवन में क्या महत्त्व है उसको इस पाठ के माध्यम से समझ सकते है|

4 शुक्ल जी के निबंधों में बहुत अधिक प्रौढता, गंभिरता और चिंतनशीलता पायी जाती हैं|

5 करुणा रामचंद्र शुक्ल के चिन्तामणि निबंध संग्रह में संगृहीत निबंध है|

6 भारत्तेंदु हरिश्चंद्र और बालकृष्ण भट्ट को हिंदी के आरंभिक निबंधकारो के रूप में जाना जाता है |

7 छायावाद युग को निबंध साहित्य के युग में शुक्ल युग कहा जाता है कयोंकि रामचंद्र शुक्ल ने चिन्तामणि के अपने निबंधों द्‌वारा इस विधा को उच्य शिखर तक पहुचाया|

8 दुःख करुणा का आधार है |

9 करुणा एक मनोविकार है |

10 मानव जीवन की सजीवता मनोवेगों पर निर्भर है

4.6 शब्द संपदा

करुणा	-	दया, रहम	उत्तेजना	-	भावावेश
मनोविकास	-	मन का आवेग	अवलंबित	-	आश्रित
शीलवान	-	शीलवाला	अज्ञात	-	अनजान, अजनबी

सात्विकता	-	सभी गुणों से संपन्न, अच्छी आदत वाला
दुर्जनता	-	दुष्टता, पापकर्म, दुराचार
निवृत्ति	-	समाप्ति, रूकावट
निराकरण	-	अलग करना, दूर हटाना
घनिष्ठता	-	नजदीकी, करीबी
अपाहिज	-	लाचार, मजबूर
आलंबन	-	मदद, सहायता
सहानुभूति	-	हमदर्दी, संवेदना, कृपा

4.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

अ. दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए |

1. करुणा निबंध का मूल कथ्य स्पष्ट कीजिए।
2. हिंदी निबंध के विकास यात्रा पर प्रकाश डालिए।

खंड ब

लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए |

1. हिन्दी निबंध के विकास क्रम में भारतेन्दु युग के योगदान का वर्णन कीजिए।
2. हिन्दी निबंध के विकास क्रम में शुक्ल युग के योगदान का वर्णन कीजिए।

खंड स

सही विकल्प चुनिए

1 ‘स्वर्ग में विचार सभा’ के रचनाकार कौन हैं ?

(अ) रामचंद्र शुक्ल (आ) भारतेंदु हरिश्चंद्र (इ) विधानिवास मिश्र (ई)शांतिप्रिय द्‌विवेदी

2 इनमें से एक हजारी प्रसाद द्‌विवेदी का निबंध संग्रह नहीं है |

(अ) अशोक के फूल (आ) कुटज (इ) श्रद्धा भक्ति (ई) कल्पलता

3 प्रभाववादी समीक्षा के अग्रदूत कौन है ?

(आ) रामचंद्र शुक्ल (आ) भारतेंदु हरिश्चंद्र (इ) विधानिवास मिश्र (ई)शांतिप्रिय द्विवेदी

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

1 'साधारणीकरण' __________ के अंतर्गत आने वाला निबंध है |

2 'शिवशंभु के चिट्ठे' में __________ को संबोधित किया गया है |

3 द्विवेदी युग में आलोचनात्मक निबंध लिखने का श्रेय __________ का प्राप्त है |

सुमेल कीजिए

i)	आस्था के चरण	(अ) सरदार पूर्णसिंह
ii)	चिन्तामणि	(आ) विधानिवास मिश्र
iii)	तुम चंदन हम पानी	(इ) रामचंद्र शुक्ल
iv)	मजदूरी और प्रेम	(ई) नगेंद्र

4.8 पठनीय पुस्तकें

1. चिंतामणि - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, लोक भारती प्रकाशन
2. हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

3. गद्य की नई विधाओं का विकास - प्रो. माजिदा असद, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली

इकाई –8‘अपनी खबर’ (प्रथम अंश) समीक्षात्मक अध्यन

रूपरेखा

8.0 प्रस्तावना

8.1 उद्देश्य

8.2 मूल पाठ: ‘अपनी खबर’ (प्रथम अंश) समीक्षात्मक अध्यन

8.2.1 आत्मकथा का विकास क्रम

8.2.2 आरंभिक युग

8.2.3 स्वतंत्रता पूर्व युग

8.2.4 स्वतंत्रयोत्तर युग

8.2.5 अपनी खबर की समीक्षा

8.3 पाठ सार

8.4 पाठ की उप्लभ्धियाँ

8.5 शब्द सम्पदा

8.6 परीक्षार्थ प्रश्न

8.7 पठनीय पुस्तकें

8.0 प्रस्तावना

उपन्यास, संस्मरण, रेखाचित्र, रिपोतार्ज, यात्रा वृत्तांत और डायरी की ही भाँति आत्मकथा साहित्यिक विद्या का भी आगमन पश्चिम से हुआ माना जाता है। डॉ. नामवर सिंह ने अपने एक व्याख्यान में कहा था कि- “अपना लेने पर कोई चीज परायी नहीं रह जाती बल्कि अपनी हो जाती है।” इसलिए बहस अपनाव को लेकर नहीं उसकी चेतना और प्रक्रिया को लेकर हो सकती है। आधुनिक काल में पाश्चात्य संसकृति से संवाद स्थापित होने पर हिन्दी के रचनाकारों ने इन विधाओं को अपनाया और अपने जातीय संदर्भ से जोड़कर उन्हें विकसित किया। महात्मा गांधी कहते थे कि अपने चिंतन के दरवाजे और खिड़कियाँ खुली रखनी चाहिए, ताकि विश्व की विभिन्न संस्कृतियों की हवाएँ उसमें बेरोकटोक आएँ जाएँ, मगर यह ध्यान रहे कि उसी समय अपनी सांस्कृतिक परम्परा में हमारी जड़ें बहुत गहरी और मजबूत हो।

आत्मकथा स्वानुभूति का सबसे सरल माध्यम है। आत्मकथा के द्वारा लेखक अपने जीवन, परिवेश, महत्वपूर्ण घटनाओं विचारधारा, निजी अनुभव अपनी क्षमताओं और

दुर्बलताओं तथा अपने समय की सामाजिक-राजनीतिक स्थितियों को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करता है।

8.1 उद्देश्य

इस पाठ में प्रसिद्ध कथाकार पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र की आत्मकथा 'अपनी खबर' पर विचार हुआ है। इस आत्कथा से आप -

- ❖ पितृ प्रेम का अभाव तथा दूषित एवं गर्हित परिवेश पर विचार कर सकेंगे।
- ❖ गरीबी एवं शिक्षा के अभाव के कारण किस प्रकार मनुष्य बुरी आदतों में संलग्न हो जाता है, उस पर विचार किया जाएगा |
- ❖ एक क्रोधी एवं जुआड़ी भाई किस प्रकार घर को बर्बाद करता है उस पर विचार किया जाएगा ।

8.2 मूल पाठ: 'अपनी खबर' (प्रथम अंश) समीक्षात्मक अध्यन

8.2.1 आत्मकथा का विकास क्रम

8.2.2 आरंभिक युग

हिन्दी में आत्मकथाओं की एक लंबी परंपरा रही है। हिंदी की प्रथम आत्मकथा बनारसीदास जैन कृत 'अर्द्धकथानक' (1641) है। आत्मकथा की मूलभूत विशेषता निरपेक्षता और तटस्थता को इसमें सहज ही देखा जा सकता है। इसमें लेखक ने अपने गुणों और अवगुणों का यथार्थ चित्रण किया है। पद्य में लिखी इस आत्मकथा के अतिरिक्त पूरे मध्यकाल में हिंदी में कोई दूसरी आत्मकथा नहीं मिलती है।

अन्य गद्य विधाओं के साथ आत्मकथा भी भारतेन्दु हरिश्चंद्र के समय में विकसित हुई। भारतेन्दु ने अपनी पत्रिकाओं के माध्यम से इस विद्या का पल्लवन किया। उनकी स्वयं की आत्मकथा 'एक कहानी कुछ आपबीती कुछ जगबीती' का आरंभिक अंश 'प्रथम खेल' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। उनकी संक्षिप्त सी आत्मकथा की भाषा आम बोलचाल के शब्दों से निर्मित हुई है जो एक तरह से बाद की आत्मकथाओं के लिए आधार दृष्टि का काम करती है।

बोध प्रश्न

1 आत्मकथा विधा का विकास किस समय से माना जाता है ?

8.2.3 स्वतंत्रता पूर्व युग

हिंदी के आत्मकथात्मक साहित्य के विकास में 'हंस' के आत्मकथांक का विशिष्ट योगदान है। सन् 1932 में प्रकाशित इस अंक में जयशंकर प्रसाद, वैद्य हरिदास, विनोदशंकर व्यास, विश्वभंरनाथ शर्मा कौशिक, दयाराम निगम, मौलवी महेश प्रसाद, गोपाल राम गहमरी, सुदर्शन शिवपूजन सहाय, रायकृष्णदास, श्रीराम शर्मा आदि साहित्यकारों और गैर साहित्यकारों के जीवन के कुछ अंशों को प्रेमचंद ने स्थान दिया है। इस काल की सबसे महत्वपूर्ण आत्मकथा श्यामसुंदर दास कृत 'मेरी आत्मकहानी' (सन् 1941) है। इसमें लेखक ने अपने जीवन की निजी घटनाओं को कम स्थान दिया है। इसकी बजाय काशी के इतिहास और समकालीन साहित्यिक गतिविधियों को भरपूर स्थान मिला है। इसी समय बाबू गुलाबराय की आत्मकथा 'मेरी असफलताएँ' प्रकाशित हुई। इस आत्मकथा में लेखक ने व्यंग्यपूर्ण रोचक शैली में अपने जीवन की असफलताओं का सजीव चित्रण किया है। सन् 1946 में राहुल सांकृत्यायन की आत्मकथा 'मेरी जीवन यात्रा' का प्रथम भाग प्रकाशित हुआ। सन् 1949 में दूसरा तथा सन् 1967 में उनकी मृत्यु के उपरांत इसके तीन भाग और प्रकाशित हुए। इस वृहत आकार की आत्मकथा की विशेषता इसकी वर्णनात्मक शैली है।

सन् 1947 के आरंभ में देश के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की आत्मकथा भी मेरी जीवन यात्रा के नाम से प्रकाशित हुई। इस वृहदकाय आत्मकथा में राजेन्द्र बाबू ने बड़ी सादगी और निश्छलता से स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान देश की दशा का वर्णन किया है।

बोध प्रश्न

1 बाबु गुलाबराय की आत्मकथा "मेरी असफलताएँ" किस शैली में लिखी गई है ?

8.2.4 स्वतंत्रयोत्तर युग

सन् 1948 में वियोगी हरि की आत्मकथा 'मेरा जीवन प्रवाह' प्रकाशित हुई। इस आत्मकथा के समाज सेवा से संबंधित अंश में समाज के निम्न वर्ग का लेखक ने बहुत मार्मिक वर्णन किया है। यशपाल कृत सिंहावलोकन का प्रथम भाग सन् 1951 में प्रकाशित हुआ। इसका दूसरा भाग सन् 1952 और तीसरा सन् 1955 में आया। यशपाल की आत्मकथा की विशेषता उसकी रोचक और मर्मस्पर्शी शैली है। सन् 1952 में शांतिप्रिय द्विवेदी की आत्मकथा 'परिव्राजक की प्रजा' प्रकाशित हुई। इसमें लेखक ने अपने जीवन के प्रारंभिक इकतालीस वर्षों की करूण कथा का वर्णन किया है। सन् 1953 में यायावर प्रवृत्ति के लेखक देवेन्द्र सत्यार्थी की आत्मकथा 'चाँद-सूरज के बीरन' प्रकाशित हुई। इसमें लेखक ने अपने जीवन की आरंभिक घटनाओं का चित्रण किया है।

सन् 1960 में प्रकाशित पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र की आत्मकथा 'अपनी खबर' बहुत चर्चित हुई। इसमें उनके जीवन की विद्रूपताओं के बीच युगीन परिवेश की यथार्थ अभिव्यक्ति हुई है। हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथा हिंदी की सर्वाधिक सफल और महत्वपूर्ण आत्मकथा मानी जाती है। 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' (सन् 1969), 'नीड़ का निर्माण फिर' (1970), 'बसेरे से दूर' (1977) और 'दशद्वार से सोपान तक' (1985) चार भागों में विभाजित उनकी आत्मकथा इस विद्या को नए शिखर पर ले गई। प्रथम खंड में बच्चन जी ने

अपने बचपन से यौवन तक के चित्र खींचे हैं। द्वितीय भाग में आत्मविश्लेषणात्मक पद्धति को अधिक स्थान मिला है। तीसरे भाग में लेखक ने अपने विदेश प्रवास का वर्णन किया है तथा चौथे और अंतिम भाग में बच्चन ने अपने जीवन के अंतिम वर्षों के अनुभवों को संचित किया है। उनके गद्य की भाषा सहज-सरल है। उनके बाद प्रकाशित आत्मकथाओं में वृंदावनलाल वर्मा की 'अपनी कहानी', देवराज उपाध्याय की 'यौवन के द्वार पर' (1970), शिवपूजन सहाय की 'मेरा जीवन' (1985), प्रतिभा अग्रवाल की 'दस्तक जिंदगी की' (1990) और भीष्म साहनी की 'आज के अतीत' (2003) प्रकाशित हुई। देश विभाजन की त्रासदी को भीष्म साहनी ने जीवंत भाषा में चित्रित किया है।

वर्तमान आत्मकथा के क्षेत्र में मराठी साहित्यकारों से प्रभावित होकर दलित रचनाकारों द्वारा अपनी स्वानुभूति व्यक्त करना साहित्यिक क्रांति कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। सदियों से हमारी पुरुषवादी और सवर्ण-वर्चस्ववादी संस्कृति की सबसे ज्यादा प्रताड़ना स्त्रियाँ और दलित जन सहते आ रहे हैं। आज यही लोग आत्मकथा के जरिए अपने दारूण अनुभवों का मार्मिक संसार उद्घाटित करेंगे तो हमारा भाव-लोक भी बदलेगा और वस्तु जगत भी। मोहनदास नैमिशराय की 'अपने अपने पिंजरे', ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन', मैत्रेयी पुष्पा की 'कस्तूरी कुण्डल बसै', तुलसीदास की 'मुर्दहिया' और 'मणिकर्णिका', श्यौराज सिंह बेचैने की 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' आत्मकथाएँ इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण पहल है। दलित आत्मकथाओं के बारे में ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं- ''किसी भी दलित द्वारा लिखी आत्मकथा सिर्फ उसकी जीवनगाथा नहीं होती बल्कि उसके समाज की जीवनगाथा भी होती है। लेखक की आत्म अभिव्यक्ति होती है। उसके जीवन के दुःख, दर्द, अपमान, उपेक्षा, आत्मकथा उसकी जाति एवं समाज के दुःख दर्द और अपमान, उपेक्षा इत्यादि को भी स्वर देता है।''

हिंदी की पहली दलित आत्मकथा 1995 में प्रकाशित मोहनदास नैमिशराय कृत 'अपने अपने पिंजरे' को माना जाता है। भारतीय समाज की वर्ण व्यवस्था तले हजारों वर्षों से उपेक्षित जीवन जी रहे समाज का चित्रण इस आत्मकथा में मुख्य विषय के रूप में उभरकर आया है। 1997 में प्रकाशित हुई ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' सामाजिक भेदभाव को उजागर करने वाली महत्वपूर्ण आत्मकथा है। 1999 में प्रकाशित 'दोहरा अभिशाप' कौशल्या बैसंत्री की आत्मकथा हिन्दी दलित साहित्य की पहली आत्मकथा है। एक दलित स्त्री को दोहरे अभिशाप से गुजरना पड़ता है। एक उसका स्त्री होना और दूसरा दलित होना।

'शिकंजे का दर्द' सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा नारी के शोषण के विरूद्ध संघर्ष की गाथा है। हिन्दी में देर से ही सही पर सार्थक और आत्मपरीक्षण से क्रांति की तरह है। तुलसीराम की आत्मकथा 'मुर्दहिया' पूरे दलित समाज के अदम्य जीवन संदर्भ के साथ आगे बढ़ने का संदेश देती है। श्यौराज सिंह बेचैन की आत्मकथा 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' 2009 में प्रकाशित हुई। लेखक ने दलित जीवन की वास्तविकता की इसमें निष्पक्ष भाव से व्यक्त किया है। वर्तमान समय में महिला और दलित रचनाकारों ने इस विधा को गहरे सामाजिक सरोकारों से जोड़ा है। इस संदर्भ में मैत्रेयी पुष्पा, प्रभा खेतान आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि हिंदी आत्मकथा साहित्य एक लंबी यात्रा के बाद उस मुकाम पर पहुँची है जहाँ वे व्यक्तिगत गुण दोषों की सच्चाई को बयान करने में सक्षम हैं।

बोध प्रश्न

1 अपनी खबर आत्मकथा में लेखक ने किस प्रकार के परिवेश की चर्चा की है ?

8.2.5 अपनी खबर की समीक्षा

अपनी ख़बर

मनकि बेचन पाण्डेय, वल्द बैजनाथ पाण्डेय, उम्र साठ साल, कौम बरहमन, पेशा अख़बार-नवीसी और अफ़साना-नवीसी, साकिन मुहल्ला सद्दूपुर चुनार, जिला मिर्जापुर (यू.पी.), हाल मुकाम कृष्णनगर, दिल्ली-31, आज जिंदगी के साथ साल सकुशल समाप्त हो जाने के उपलक्ष्य में उन्हें, जो कि मुझे कम या बेश जानते हैं, अपने जीवन के आरंभिक बीस बरसों की घटनाओं से कसमसाती कहानी सुनाना चाहता हूँ।

विक्रमीय संवत् के 1957वें वर्ष के पौष शुक्ल अष्टमी की रात साढ़े आठ बजे मेरा जन्म यू.पी. के मिर्जापुर जिले की चुनार तहसील के सद्दूपुर नामक मुहल्ले में बैजनाथ पाण्डेय नामक कौशिक गोत्रोत्पन्न सरयूपारीण ब्राह्मण के घर पर हुआ। मेरी माता का नाम जयकली, जिसे बिगाड़कर लोग 'जयकल्ली' पुकारते थे, मेरे पिता तेजस्वी, सतोगुणी, वैष्णव-हृदय के थे। मेरी माता ब्राह्मणी होने के बावजूद परम उग्र, कराल-क्षत्राणी स्वभाव की थीं। मेरी एक दर्जन बहन-भाई थे जिनमें अधिकतर पैदा होते ही या साल-दो साल के होते-होते प्रभु के प्यारे हो गए थे। पहले भाइयों के नाम उमाचरण, देवीचरण, श्रीचरण, श्यामाचरण, रामाचरण आदि थे। इनमें अधिकतर बच्चे दग़ा दे गए थे। अत: मेरे जन्म पर कोई खास उत्साह नहीं प्रकट किया गया, शायद थाली भी न बजाई गई हो। नौबत और शहनाई तो दूर की बात, मैं भी कहीं दिवंगत अग्रजों की राह न लगूँ, अत: तय यह पाया कि पहले तो मेरी जन्मकुण्डली न बनाई जाए, साथ ही जन्मते ही मुझे बेच दिया जाए, सो, जन्मते ही मुझे यारों ने बेच डाला। और किस कीमत पर? महज़ टके पर एक! उसका भी गुड़ माँगकर मेरी माँ ने खा लिया था। अपने पल्ले उस पर टके में से एक छदाम नहीं पड़ा था, जो मेरे जीव का संपूर्ण दाम था। अलबत्ता 'जन्मजात बिका' का बिल्ला जैसा नाम तौक की तरह गले मढ़ा गया- बेचन! बेचन नाम ऐसा नहीं जिसे ओमप्रकाश की तरह भारत-प्रचलित कहा जाए। यह तो उत्तर भारत के पूरबी जिलों में चलने वाला नाम है, सो भी अहीरों, कोरियों, तथाकथित निम्न-वर्गीयों में प्रचलित, ब्राह्मण के घर में पैदा होने पर भी मुझे यह जो मंद नाम बख्शा गया उसकी बुनियाद में मेरी बहबूदी, जिन्दगी-दराज़ की कामना ही थी। किसी भी नाम से बेटा जिए तो! आज जीवन के 60वें साल में मैं साधिकार कह सकता हूँ कि मुझे ही नहीं, मौत को भी यह नाम नापसंद है। लेकिन, अब इस उम्र में तो ऐसा लगता है यह नाम नहीं, तिलस्मी गंडा है, जिसके आगे काल का हथकण्डा भी नहीं चल पा रहा है।

इस तरह मैं शिकायत नहीं करता- देखिए तो यहाँ मैं पैदा हुआ वह परिवार तो ग़रीब था ही, नाम भी मुझे जगन्नाथ, भुवनेश्वर, राजेश्वर, धनीराम, मनीराम, सूर्यनारायण,

सुमित्रानंदन, सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन जैसा नहीं मिला। और गोया इससे भी मेरे दुर्भाग्य को संतोष नहीं हुआ तो मैंने अभी तुतलाना भी नहीं सीखा था कि पिता का स्वर्गवास हो गया। इसके बाद मैं अपने बड़े भाई के अण्डर में आया जो विवाहित थे और पिता के बाद घर के पालक थे। मेरे बड़े भाई ने विधि से कुछ भी पढ़ा नहीं था, फिर भी बुद्धि उनकी ऐसी तीव्र थी कि वह हिंदी तो बहुत ही अच्छी, साथ ही संस्कृत और बंगला भी खासी जानते थे, वैद्यक और ज्योतिष में भी टाँग अड़ाने की योग्यता रखते थे। वह समस्या-पूर्ति युग के कवि और गद्य-लेखक भी खासे थे। प्रूफ़-शोधन तथा पत्रकार-कला से भी उनका घनघोर संबंध था। मेरे यह बड़े भाई साहब जब जवान थे तभी सनातन धर्म के भाग्य में, परिवार-पद्धति के भाग्य में, सर्वनाश की भूमिका लिखी हुई थी। अतएव जाने-अनजाने युग के साथ भाई साहब को भी इस सर्वनाश नाटक में अपने हाथों पाँव में कुल्हाड़ी मारने का उन्मत्त पार्ट अदा करना पड़ा। हम नज़दीक थे, अत: भाई साहब का काम हमें अधिक दुखदायी एवं बुरा लगा। लगा, दुनिया में उन-जैसा बुरा कोई था ही नहीं। लेकिन ज़रा ही ध्यान से देखने से पता चल जाएगा कि मेरे घर में जो हो रहा था वह अकेले मेरे ही घर का नहीं, कमोबेश समाज के घर-घर का नाटक था।

और मैं उस गली की कहानी बतला दूँ जिसमें मैंने जन्म लिया था। सद्दूपुर मुहल्ले की एक गली- बँभन-टोली। गली के इस सिरे से उस सिरे तक ब्राह्मणों ही के मकान एक तरफ और दूसरी तरफ भी एक तेली तथा दो-तीन कोरियों के घरों को छोड़ बाकी ज़मीनें ब्राह्मणों की, दो-तीन घरों को छोड़ बाकी सभी ब्राह्मण खाते-पीते खासे, एकाध तो पूँजीवाले भी, दक्खिनी नाके पर भानुप्रताप तिवारी, जिनके बड़े-बड़े दो-दो मकान, फिर गरीब मुसई पाठक, फिर मेरे पिता की योग-क्षेम गृहस्थी, चर्चा भी हमीं जैसे लेकिन वैद्य होने से उनके हाथ में कल्पवृक्ष की डाल-जैसी अलौकिक विभूति हमेशा ही रही, जिससे वह प्रभाव वाले और अभावहीन थे। इसके बाद हमारे पट्टीदार भाई विंध्येश्वरी पाँडे का परिश्रमी, प्रसन्न परिवार, फिर ब्रह्मा मिश्र की हवेली, जयमंगल त्रिपाठी का घर और अंत में बेचु पाँडे का सहन, एक भानुप्रताप तिवारी को छोड़ बाकी सभी ब्राह्मण जजमानी वृत्ति वाले थे, हवेली वाले ब्रह्मा मिश्र की जजमानी सबसे ज्यादाथी। बाग-बगीचे, खेती-बाड़ी, लेन-देन भी होता था। बेचू पाँडे उनके आधे के भागीदार थे। हम लोगों की जजमानी यूँ ही जयसीताराम थी। कहिए हम शानदार भिखारी थे। भिखारी सड़क पर कपड़े फैला या गलियों में हाथ पसारकर भीख माँगता है, लेकिन हमें ग़रीब और ब्राह्मण जानकर लोग हमारे घर भीख पहुँचा जाते थे। यह भीख भी शानदार थी, तब तक जब तक ब्राह्मणों के घर में ब्राह्मण पैदा होते थे, लेकिन जब ब्राह्मणों के घर में ब्रह्मराक्षस पैदा होने लगे तब तो यह जजमानी वृत्ति नितांत कमीना धंधा-स्वयं नीचातिनीच होकर भी दूसरों से चरण पुजवाना रह गई थी। यह कथा आज से 55 वर्ष पूर्व तक की है। तभी तथाकथित सनातन धर्म के नाश का आरंभ उसी के अनुगामियों-धर्म के ठेकेदार ब्राह्मणों द्वारा हो चुका था। मानो तो देव नहीं पत्थर! धर्म विश्वास पर पनपता है। जिस जनरेशन में मेरे बड़े भाई साहब पैदा हुए थे उसका विश्वास धर्म से उठ रहा था। मुहल्ले के हरेक घर में एक-न-एक ऐसा जवान पैदा हो चुका था जो पुरानी मर्यादाओं और धर्म को ताक पर रखकर उच्छृंखल आचरण में रत रहा करता था और

घर वाले मारे मोह के परिवार के उस प्राणी का विरोध करने में असमर्थ थे। शास्त्रों में विधान है कि कुल-धर्म-विरूद्ध आचरण करने वाले को सड़ी अँगुली की तरह काटकर समाजतन से अलग कर देना चाहिए। हम जब तक ऐसा करते रहे तब तक समाज का स्वास्थ्य चुस्त-दुरुस्त था।

इस पूर्णता से कि वह सनातन धर्म तो अब पुन: जागने जीने वाला नहीं जिसके सरगना ब्राह्मण लोग थे। ब्राह्मण-कुल में मैं भी पैदा हुआ हूँ। कोई पूछ सकता है कि सनातन धर्म या ब्राह्मण धर्म के इस विनाश पर मेरी क्‍या राय है। मेरी क्या राय हो सकती है? मैं कोई व्यावसायिक 'राय' साहिब नहीं, जो वस्तु नष्ट होने योग्य होती है, जिसकी उपयोगिता सर्वथा समाप्त हो जाती है, वही नष्ट होती है, उसी का अंत होता है, रहा मेरा ब्राह्मण कुल में पैदा होना, सो उसे मैं नियति की भूल मानता हूँ। जब से पैदा हुआ तब से आज तक शूद्र-का-शूद्र हूं। 'जन्मना जायते शूद्र', मनु का वाक्य है कि नहीं- "संस्कारात् द्विजमुच्यते।" जन्म से सभी शूद्र होते हैं, बाद के संस्कार द्वारा नव-प्रज्ञा प्राप्त कर द्विज बनते हैं। वह संस्कार पाण्डेय बेचन शर्मा के पल्ले न तो बचपन में पड़ा था, न जवानी में और न आज तक। आदि से आज तक एक दिन भी जो ब्राह्मण रहा हो उसे फिर मनुष्य-जन्म लिए, फिर ट्टी की हाजत सताए, फिर राम-राम के पहर आबदस्त लेने की घृणित घड़ी उसके हाथ में आए और अब इस साठ वर्ष की वय में यदि मैं शिकायत करूँ कि हाय रे, मैं सारे जीवन शूद्र-का-शूद्र ही रहा तो मुझ-सा मतिमन्द टॉर्च लाइट लेकर ढूँढने पर भी दुनिया में नहीं मिलेगा। सो, जैसे मैं स्वयं को बुरा नहीं मानता, वैसे ही शूद्र को भी नहीं मानता। मैं जैसे स्वयं को भला ही समझता हूँ, वैसे ही शूद्र का भी भला ही समझता हूँ। शूद्र द्विज (या ब्राह्मण) का पूर्व-रूप है, वैसे ही जैसे मूर्ति का पूर्व रूप अनगढ़ पत्थर। और मैं अपनी अनगढ़ता को गर्व से देखता हूँ। इसलिए कि जब तक अनगढ़ हूँ तभी तक विश्वविराट् की मूर्तियों की संभावनाएँ मुझमें सुरक्षित हैं, गढ़ा गया नहीं कि एक रूपता, जड़ता गले पड़ी। श्रीकृष्ण की मूर्ति का पत्थर श्रीकृष्ण ही की मूर्तिभावना का प्रतीक रह जाता है। उसे राधा बनाना असंभव है। सो, लो! मैं ऐसा अनगढ़ पत्थर जिसमें रूप नहीं, रेखा नहीं, और न ही विकट-विकट भविष्य में कुछ बनता-बनाता ही दिखाई देता है। फिर भी मैं परम संतुष्ट इस कल्पना-मात्र से कि मुझे कोई एक बड़ा-से-बड़ा रूप नहीं मिला तो बला से मेरी, मैं अपनी अनगढ़ता से ही खुश हूँ। यह अनगढ़ता जब तक है तब तक कोई भी पानी सभी रूप मुझमें है। खैर, इन बातों क्या धरा है! मैं यह कहना चाहता था कि आज भी, मैं निस्संकोच शूद्र हूँ और ब्राह्मणों के घर में पैदा होने के सबब-साधारण नहीं- असाधारण शूद्र हूँ। ब्राह्मण-ब्राह्मणी से मुझे शूद्र-शूद्राणी अधिक आकर्षक, अपने अंग के मालूम पड़ते हैं। यहाँ तक कि आज भी जब मैं खानाबदोशों, बंजारों, जिप्सियों का गंदगी, जवानी, जादू और मूर्खता से भरा गिरोह देखता हूँ तब मेरा मन करता है कि ललककर उन्हीं में लीन हो जाऊँ, विलीन। उन्हें के साथ आवारा घूमूँ-फिरूँ, किसी हरजाई, आवारा, बंजारन युवती के मादक मोह में- नगर-नगर, शहर-शहर, दर-दर-छुरी, छुरे, मूँगे, कस्तूरी मग के नाफ़े, शिलाजीत बेचता।

मेरा ख्याल है अक्षरारम्भ से पहले ही मेरे कान में 'वेश्या' या 'रण्डी' शब्द पड़ चुका था। मैं पाँच-ही-छह साल का रहा होऊँगा जब मेरे घर में मिर्जापुर की एक टकैल वेश्या का

प्रवेश हुआ था। पुरुष वेश में चूड़ीदार चपकन और पगड़ी पहनकर वह बाहरवाली कोठरी में रात में आई और तब तक रही जब तक मेरे चाचाजी हाथ में खड़ाऊँ लेकर उसे मारने को झपटे नहीं-यथायोग्य दुर्वचन सुनाते हुए। मुहल्ले के आधे दर्जन मनचले ब्राह्मण युवक उस वेश्या से मिलने मेरे यहाँ आ जमते थे। मकान के अंदर की ब्राह्मणियाँ मेरी माँ और भाभी किंकर्तव्यविमूढ़ा हो गई थीं। भाभी तो रोने भी लगी थी। पर ये कुलीन औरतें मुखर विरोध करने में असमर्थ थीं, इसलिए कि मेरे उन्मत्त भाई साहब एक ही लाठी से दोनों ही को हाँकने में कोई ग्लानि या हानि नहीं समझते थे। वैसे वह मंद जमावड़ा मेरे घर हुआ था, लेकिन हमप्याले लोग पड़ोसी ही थे नेता (यानी मेरे पिता) के उठ जाने से मेरे घर में अखण्ड अराजकता थी। लेकिन वश चलता और मजबूत सरपरस्तों का शासन न होता, तो दूसरे यार भी अपने घरों में वेश्या को टिकाकर सुरा-सुन्दरी-स्वाद लेने से बाज नहीं आते। पाप पर मोहित सभी थे। सभी थे तत्वत: धर्म से विरहित। जुआ तो प्राय: मुहल्ले के किसी भी घर में खिलाया जाता था, जिससे उस घर के किसी-न-किसी प्राणी को नाल के रूप में एक-दो रुपये भी मिल जाते थे। मेरे घर में जुआ अक्सर हुआ करता, अक्सर जुए से जब नाल की रकम वसूल होती तब मेरे घर में भोजन की व्यवस्था होती थी, आटा, चावल, दाल और नमक आता था।

मेरी माँ और भाभी को मकान के पिछले खण्ड में कैद कर मेरा भाई बिचले खण्ड में जुए का फड़ डालता, जिसमें मुहल्ले, कस्बा और आसपास के गाँवों के भी शातिर जुआरी जुड़ते। चरस और गाँजे की चिलमें लपलपाती, ब्यौड़ा यानी विकट देसी दारू की दुर्गंधमयी बोतलें खुलतीं। जब भी मेरे घर में जुआ जमता, भाई की आज्ञा से दरवाजे पर बैठकर मैं गली के दोनों नाके ताड़ता रहता कि पुलिस वाले तो नहीं आ रहे हैं। जरूर इस ड्यूटी के बदले पैसा-दो पैसा मुझे भी किसी परिचित जुआरी से मिलता रहा होगा। जुए की इस ज़बरदस्त जकड़ में मेरा भाई इस कदर पड़ गया था कि भाभी के सारे गहने बिक गए या अंत में बिक जाने के लिए गिरवी रख दिए गए। फिर मेरी माँ के गहनों की बारी आई। जिसने अपना संचय सौंपने में जरा भी हिचक दिखलाई उसे भाई साहब ने जूतों, थप्पड़ों, घूसों, लातों से घूरा-अक्सर गाँजा-चरस या शराब के नशे में। यों तो भाई मुझे भी मारता-पीटता था, बेसबब, बहुत बुरी तरह, अक्सर लेकिन वह जब मेरी माँ को मारता और वह अनाथा विवशा रोती-घिघियाती (लड़का अपना ही था, अत: खुलकर रो-घिघिया भी नहीं सकती थी) तब भाई का आचरण मुझे बहुत ही बुरा मालूम पड़ता था। पर मैं कर ही क्या सकता था! चार-पाँच साल का बालक! उसके सिर पर घर की सरदारी पगड़ी बाँधी गई थी। परिवार का नेता था वह। अन्नदाता था वह। सो, मेरी भाभी-आई के गहने जब जुआ-यज्ञ में स्वाहा हो गए तब घर के बरतन-भाँडों की शामत आई। जितने भी काम या दाम लायक बरतन थे, या तो अड़ोसी-पड़ोसी के घर गिरों धरे गए या पाँच रुपये की वस्तु रुपया-दो रुपया में बरबाद की गई। इसके बाद ब्राह्मण के घर में जो दो-चार धर्म ग्रंथ थे- भागवत, गरुड़पुराण, रामायण, गीता- मेरे भाई ने एक-एक को दोनों हाथों से बेचकर प्राप्त रकम को या तो जुआ में अथवा गाँजा-चरस के धुआँ में उड़ा दिया। इसके बाद दो-चार बीघे दान-दक्षिणा में मिले जो खेत थे उनकी नौबत आई। खेतों को भी बंधक या भोगबंधक रखकर भाई सहाब ने रुपये उतारे और

उनका दुरुपयोग निस्संकोच भाव से किया। और कर्ज और फर्ज! भाई के राज में परिवार ने जब जो भी पाया खाया कर्जा।

उन्हीं दिनों, एक दिन, छापा मारकर चुनार की पुलिस ने सद्दूपुर मुहल्ले के जुआरियों और उनके संगियों को रंगे हाथ गिरफ्तार कर लिया था। जुआ उस दिन मेरे घर में नहीं, मेरे घर के पिछवाड़े अलगू नामक कुम्हार के घर में हो रहा था। उस दिन मेरे भाई साहब जुए में शामिल नहीं थे। एक दोस्त की बैठक में उपन्यास पढ़ रहे थे। लेकिन पुलिस छापे के ठीक पहले अलगू के घर वह सूचना देने गए थे कहीं से खबर-सुराग पाकर कि भागो, पुलिस आ रही है, कि पुलिस वाले आ ही धमके! शायद सबसे पहले मेरे भाई साहब ही पुलिस की पकड़ में आए थे। गिरफ्तार दर्जन-भर जुआरी हुए होंगे। फिर भी, कई जान लेकर जूते छोड़कर भाग गए, उन जूतों की लम्बी माला अलगू कुम्हार से ही तैयार कराने के बाद उसी के गले में डालकर, जुलूस बनाकर जब पुलिस वाले राजपथ से जुआरियों को हवालात की तरफ ले चले तो बंधुओं में मेरा भाई भी था। उस भयकारी जुलूस के पीछे काफी दूर तक अपने भाई या अन्नदाता के लिए रोता हुआ मैं भी गया था। फिर घर लौटने पर देखा आई और भाभी रो रही थीं। काफी दिनों मिर्जापुर में केस चलने के बाद उस मामले में भाई को पचास रुपए जुमाना हुआ। और चुनार में रहने का अब कोई तरीका बच नहीं रहा, और कर्जदाताओं से बेइज्जत होने का प्रसंग पगे-पगे प्रस्तुत होने लगा। और घर में अबलाएँ और बच्चे दाने-दाने के मोहताज हो गए। तब और तभी मेरे बड़े भाई को देश छोड़ परदेश जाने और कमाने की सूझी। फलत: वह पहले काशी और बाद में अयोध्या की रामलीला मंडलियों में एक्टिंग करने लगे। तनख़ाह पाते थे दोनों वक्त फ्री भोजन और तीस रुपये मासिक। इन रुपयों में से दस-पाँच अक्सर वह चुनार भी भेजते थे। पर चुनार में अक्सर चूहे डंड ही पेला करते थे, या जजमानी से भिक्षा मिल जाती थी, या मेरी आई किसी की मजूरी कर कूट-पीसकर लाती थी। बड़ी मुश्किलों से सुबह खाना मिलता तो शाम को नहीं, शाम मिलता तो सबेरे नहीं, जहाँ भोजन-वस्त्र के लाले वहाँ शिक्षा-दीक्षा की क्या हालत रही होगी, सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। शिक्षा-दीक्षा दूर, मेरे सामने तो आँखें खोलते ही जीवन-ग्रंथ का जो पृष्ठ पड़ा वह शिक्षा-दीक्षा को चौपट करने वाला था। जीवन को स्वर्ग और नरक दोनों ही का सम्मिश्रण कहा जाए तो मैंने नरक के आकर्षक सिर से जीवन-दर्शन आरंभ किया और बहुत देर, बहुत दूर, तक उसी राह चलता रहा। इस बीच में स्वर्ग की केवल सुनता ही रहा मैं। मेरी कोशिश सही न होगी, स्वर्ग जीवन में मुझे कहीं नजर आया नहीं, और नरक की तलाश में किसी भी दिशा में दूर तक नजर भटकाने की जरूरत ही नहीं पड़ी। सो, समय पर न मिले तो स्वर्ग के लिए भी कौन प्रतीक्षा करे! नरक लाख बुरा बदनाम हो, लेकिन अपना तो जीवन-संगी बन चुका है, सहज हो गया है, रास आ गया है, डालडा खाते-खाते जैसे शुद्ध घृत की सुध-बुध भी समाप्त हो जाती है। पहचान-परख तक भूल जाती है, वैसे ही लगातार सुलभ होने से नरक भी धीरे-धीरे परिचित, प्रिय, प्रियवर यानी प्रियतम हो जाता है। ग़ालिब ने अपने ढंग से कहा है- ''क्यों न फिरदौस को दोज़ख से मिला दें या रब! सैर के वास्ते थोड़ी-सी फिजा और सही।'' जब मेरे पिता जीवित थे तभी न जाने कैसे मेरे दोनों बड़े भाइयों को

रामलीला में पार्ट करने का चस्का लग गया था। ये किशोरावस्था ही में ऐसे बेकहे हो गए थे कि कुल और पिता को धता बताकर चुनार से मिर्जापुर भागकर रामलीला में राम-लक्ष्मण का अभिनय करने लगे। क्रोध और भविष्य के भय से काँपते हुए पिता, जब मिर्जापुर पहुँचे तो क्या देखते हैं कि दोनों सपूत राम-लक्ष्मण बने रंगमंच पर शोभायमान हैं। कहते हैं वह दृश्य पिता से देखा न गया। जनता को भूल, स्टेज पर झपट लौंडों के माथे से मुकुट-किरीटादि नोच-फेंक वहीं से उन्हें झपड़ियाते भूले बछड़ों की तरह बाँधकर चुनार ले आए थे। पिता के देहांत के बाद चुनार की विजयदशमी वाली लीला में, अक्सर वह कोई-न-कोई पार्ट ही 'प्ले' किया करते थे। चुनार ही में एक-दो बार सीता बनाकर मुझे भी बड़े भाई ने इस घाट पर उतार रखा था। जब वह अयोध्या की रामलीला-मण्डली में थे तब मुझे उन्होंने बनारस की एक लीला-मण्डली में अपने किसी खत्री मित्र के हवाले कर रखा था। तब मैं आठ साल का रहा होऊँगा या नौ का। जुल्फों में तीन-तीन फूल-चिड़ी बनाता था। काफी तेल लगाने के बाद बालों में सस्ती वेसलिन भी लगाता था। वह वेसलिन, जिसकी गंध पिला हाउस (बम्बई) या सरकटा गली (कलकत्ता) की सस्ती वेश्याओं के अंग से आती है। कुछ ही दिनों बाद भाई साहब ने बनारस वालों की मण्डली से मुझे भी साधुओं की रामलीला मण्डली में बुला लिया था। भाई साहब की नज़र में मेरे उनके संग रहने में अनेक फायदे थे। पहले तो घर में कोई शरारती नहीं रहेगा, दूसरे उनकी निगरानी में रामलीला वालों की बुरी हवा से मैं बचूँगा, तीसरे 'ब्वॉय सरवेंट' चौबीस घण्टे हाज़िर-बिला तनख़ाह, ऊपर से रामलीला में लक्ष्मण और जानकी बनकर आठ-दस रुपये मासिक कमा देने वाला, उन दिनों रामलीला के निश्चित पार्टों के संवाद बाज़बान करने के अलावा भाई का एक मित्र वैरागी पखावजी मुझे ताल और स्वर यानी पक्के रंग के संगीत की शिक्षा भी दिया करता था। उन्हीं दिनों नाचना नहीं, तो नाचने की चुस्ती से चंचल चरण चलाना, ठुमुकना, थिरकना, बल खाना वगैरह भी मुझे सिखलाया गया था। छुटपन में मेरी शिक्षा बिल्कुल आरंभिक क ख ग दरजों तक हुई थी। अभी थोड़ा ही बहुत अक्षर-शब्द-ज्ञान हो पाया था कि मुझे ऐसा लगा कि यह पढ़ना-पढ़ाना मेरे बलबूते की बात नहीं है। मगर इससे गला छूटे तो कैसे? सुना था हनुमानचालीसा का पाठ करने से सारे दु:ख दूर, मसले स्वयमेव हल हो जाते हैं, लेकिन हनुमानचालीसा मेरे पास कहाँ! साथ ही पास में 'पीसा' कहाँ कि हनुमानचालीस खरीदा जा सके! मैं जिस दरजे में पढ़ता था उसी में एक काला-सा लड़का था किसी छोटी जाति का। वह अपने बस्ते में रोज़ हनुमानचालीसा की एक प्रति ले आता था और मैं ललचाकर, तड़पकर रह जाता था। उस दो पैसे की विख्यात पुस्तक के लिए अंत में मैंने चोरी करने का निश्चय किया। मैं ऊँच लड़का, वह नीच, लेकिन मैंने उसकी हनुमानचालीसा चुरा ली और बड़े चाव से मैं उसका पाठ करने लगा। मुझमें जो ब्राह्मण है वह आज भी यही सोचता है कि वह हनुमानचालीस ही का प्रभाव था कि स्कूली शिक्षा से हटाकर मुझे रामलीला मण्डली में डटाया गया। वहाँ पर मेरा परिचय श्रीरामचरितमानस से होना ही था, क्योंकि मैं जानकी, लक्ष्मण और भरत तक का पार्ट किया करता था। रामलीला-मण्डलियों ही में मैंने सुलझे साधुओं के व्रत और निष्ठापूर्वक नवरात्रियों के नौ दिनों में रामायण का पाठ होते देखा, सुना। ऐसे पाठ के फल अंतत: सो, मैंने नौ-दस-ग्यारह की वय में सामर्थ्यानुसार श्रद्धा-भक्ति से रामायण के नवाह्न पाठ किए।

एक नहीं, अनेक। इन लीला-धारियों की मण्डली में फुरसत के अवसरों में लोग अन्त्याक्षरी-सम्मेलन भी अक्सर किया करते थे, जिनमें ज्यादातर तुलसीकृत रामायण से ही उदाहरण दिए जाते थे। इन सम्मेलनों से भी मुझे रामायण का स्पर्श अधिकाधिक होने लगा था। उन दिनों रामायण के विविध अंश मेरे कंठाग्र, जिह्वाग्र, रहा करते थे और उन दिनों रामलीला में अभिनेता संवाद कहते रहते थे? पहले रामायणी चौपाई या दोहा अर्ध-स्वर में सुनाता, फिर अभिनेता उसका (रटा या ज्ञात) अर्थ जनता को सुना देता था। रामायणी कहता- देवि, पूजि पद-कमल तुम्हारे, सुर-नर-मुनि सब होहिं सुखारे, तब सीता जी कहतीं- हे देवि! तुम्हारे सर्व-पूज्य पद कमलों को पूज-पूजकर सुर, नर और मुनि सभी सुख पाते हैं। संवाद की इस विधि में अक्सर अभिनय और उसके प्रभाव का खून हो जाता था। पर जो जनता लीला देखने आती थी वह रामलीला को थिएटर न समझ किसी भी भाव, भाषा या भेष में भगवान-भगवती की भावना मात्र से प्रभावित होने वाली होती थी। एक बार कहीं भरत का पार्ट करने वाला हमारा संगी बीमार पड़ गया। अब मुश्किल यह सामने आई कि भरत का कठोर काम करे तो कौन? इस पर मेरे बड़े भाई ने मण्डली के मालिक महन्त को वचन दिया कि वह चिंता न करें। भरत का काम बेचन कर लेगा। मुझसे उन्होंने गाँजे के नशे में चूर आँखें दिखाकर कहा- भरत के काम में ज़रा भी भूल की तो याद रहे, लीला-भूमि से ही पीटते-पीटते तुझे डेरे पर ले चलूँगा। उनसे पिटने का मुझे इतना डर था कि भरत तो भरत, वह धमकाता तो मैं कमसिनी भूल दशरथ का पार्ट भी अदा करके रख देता। रावण का भी! उस दिन राम के वन-गमन के बाद ननिहाल से बेहाल लौटे भावुक भाई भरत का संवाद था कौशल्या के आगे। वशिष्ठ की सभा में परम साधु बड़े भाई के मोह में भरत को रोते चित्रित किया है तुलसीदास जी ने। मुझे रोना आया था बड़े भाई के क्रूर भय से, और मैंने बहुत सावधानी से भरत का अभिनय किया। रामायण मुझे याद ही थी, सो बिना रामायणी का मुख देखे संवाद की चौपाई-पर-चौपाई, दोहे-पर-दोहा अर्थसहित मैं सुनाता गया। मैं रोता था भाई के भय से, जनता ने समझा भरत जी अभिनय-कला का शिखर छू रहे हैं। खूब ही जमा मेरा काम! महंतजी प्रसन्न हो गए और स्टेज ही पर दस रुपए इनाम, तथा एक रुपया महीना तनख़ाह बढ़ने की घोषणा हुई। बधाइयाँ और इनाम के रुपये भाई साहब के पल्ले लगे। पाँव तो उस दिन भी मैं भाई साहब के दाबता रहा तब तक जब तक वह सो नहीं गए-हाँ उस दिन उन्होंने नित्य की तरह, पाँव दबवाते-दबवाते दो-चार लातें नहीं लगाई कि मैं ठीक से क्यों नहीं दबाता? कि मैं झपकियाँ क्यों लेता हूँ?

पाठ की समीक्षा

आत्मकथा हिंदी साहित्य की नूतन विधओं में से एक है। पश्चिम के प्रभाव से यह विधा भी हिंदी में पल्लवित हुई। स्वयं के द्वारा लिखी अपनी जीवनी आत्मकथा कहलाती है। दूसरे शब्दों में यों कहेंगे कि जब कोई व्यक्ति कलात्मक, साहित्यिक ढंग से अपनी जीवनी स्वयं लिखता है तब उसे आत्मकथा कहते हैं। लेखक अपने जीवन में घटित घटनाओं का क्रमिक ढंग से वर्णन कर, उन्हें सजीवता प्रदान करता है।

आत्मकथा से अतीत के चित्रण के साथ परिवेश की अभिव्यक्ति होती है। जो क्षण वह जी चुका है, उसका पुन: सृजन वह आत्मकथा के माध्यम से करता है। यहाँ लेखक स्रष्टा भी

होता है और सामग्री भी। उसे साधन और साध्य दोनों कहा जा सकता है। ऐसे हालात में कभी सृजक कथ्य पर तो कभी कथ्य सृजक पर हावी हो जाता है।

जीवन यात्रा में प्राप्त हुए अपने अनुभवों को दूसरों के समक्ष रखना मानवीय प्रवत्ति है। इस स्वाभाविक प्रवृत्ति के अतिरिक्त और अनेक कारण होते हैं जिनकी वजह से आत्मकथा लिखी जाती है। मनुष्य चाहता है कि उसके अनुभवों से अन्य लोग लाभ उठाएं। आत्मकथाकार के लिए अपने चरित्र का उद्घाटन और विश्लेषण करना बहुत कठिन होता है। गुण-निरूपण से आत्म प्रशंसक होने का खतरा होता है, तो दोष दर्शाने से यह भय होता है कि लोग उसे बुरा समझेंगे। आत्मकथा में वैयक्तिक जीवन का उल्लेख होता है। यह जरूरी नहीं कि लेखक अपने जीवन की संपूर्ण घटनाओं का वर्णन करे। आत्मकथा में अतीत और वर्तमान का गहरा संबंध है।

लेखक जीवन मूल्यों के संबंध में आत्मकथा के माध्यम से विशिष्ट व्याख्या भी प्रस्तुत करता है। उससे उसके व्यक्तित्व और चरित्र का पता चलता है। आत्मकथा दो प्रकार की होती है- वास्तविक और कल्पित। वास्तविक आत्मकथा निज संदर्भ में होती है जबकि काल्पनिक दूसरों के संबंध में।

विक्रम संवत के 1957वें वर्ष के पौष शुक्ल अष्टमी की रात साढ़े आठ बजे पाण्डेय बेचन शर्मा ‘उग्र’ का जन्म यू.पी. के मिर्जापुर जिले के चुनार तहसील के सद्दूपुर नामक मुहल्ले में हुआ। आपके पिता का नाम बैजनाथ पाण्डेय और माता का नाम जयकली था। आपका जन्म एक सरयुपारीण ब्राह्मण परिवार में हुआ। उग्र के पिता तेजस्वी वैष्णव हृदय के थे किन्तु माता ब्राह्मणी होने के बाजवूद उग्र एवम क्षत्राणी स्वभाव की थी। आपके बहुत से भाई बहन पैदा हुए किन्तु अधिकतर पैदा होते ही भगवान को प्यारे हो गए। अंत में उग्र का जन्म हुआ। सर्वप्रथम तो उन्हें बेच दिया गया और उस पैसे का गुड़ मँगाकर उनकी माँ ने खा लिया इसी कारण से उग्र का नाम ‘बेचन शर्मा उग्र’ पड़ा।

उग्र एक गरीब परिवार में पैदा हुए। इनके जन्म के कुछ दिन बाद ही उनके पिता का स्वर्गवास हो गया। पिता की मृत्यु के बाद वे अपने बड़े भाई की निगरानी में रहने लगे। उनके भाई पढ़े लिखे नहीं थे किन्तु बुद्धि के बड़े तेज थे। उग्र एक ब्राह्मण परिवार से थे। इनका घर भी ब्राह्मणों केमोहल्ले में था। इनके घर की आर्थिक स्थिति बहुत ही खराब थी इसलिए बहुत से लोग गरीब और ब्राह्मण जानकर उनके घर भीख पहुँचा जाते थे।

उग्र की आत्मकथा में जाति प्रथा की भी निंदा की गई है। इनका कहना है कि उच्च और निम्न जाति में भेद करना सही नहीं है। प्रारंभ में सभी नीच कुल से ही उत्पन्न होते हैं। आर्थिक विपन्नता के कारण उग्र आगे की शिक्षा पूरी नहीं कर सके। उनके भाई साहब के कारण घर का माहौल कुछ अलग तरह का ही रहता था। उग्र के घर में हमेशा उनके भाई के कारण जुए का खेल होता था। पिता के नहीं रहने के कारण वेश्या को भी घर में रखा गया था। उनकी माता और भाभी यह सब देखकर बहुत दु:खी होती। जुए की बुरी लत के कारण उनके भाई ने अपनी पत्नी तथा माता के गहने तक बेच डाले। अंत में घर के बर्तनों की बारी आई वे भी बिक गए अकसर ये शराब और गाँजेके नशे में होते थे। एक बार पुलिस ने छापा मारा और सारे जुआरियों को पकड़ लिया और हवालात में बंद कर दिया। बहुत दिनों के बाद पचास रुपये के जुर्माना पर भाई साहब छूटे।

उग्र और उनके भाई रामलीला मंडलियों में एक्टिंग करने लगे। इस कारण से कुछ पैसा आने लगा। रामलीला मण्डली में भी उग्र के बड़े भाई उग्र पर खूब रौब जमाते थे। उन्हें अक्सर जानकी लक्ष्मण और भरत का पार्ट रामलीला मण्डली में करने को दिया जाता था। उग्र की औपचारिक स्कूली शिक्षा नहीं हुई थी। उन्होंने पढ़ना लिखना भी रामलीला में ही सीखा। दोनों भाइयों के रामलीला में काम करने से उनकी आर्थिक दशा में कुछ सुधार आया। उनके बड़े भाई साहब कुछ पैसा घर भी भेजा करते थे।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' अपने जिंदगी के साठ साल सकुशल गुजार लेने के बाद अपने जीवन के आरंभिक बीस वर्ष की कहानी सुनाते हैं। उनका पेशा अखबारनवीसी और अफसाना नवीसी था।

बोध प्रश्न

1 अपनी खबर आत्मकथा में उग्र जी के जीवन के कितने सालो का वर्णन है ?

8.3 पाठ सार

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने 'अपनी ख़बर' (1960) में अपने जीवन के प्रारंभिक इक्कीस वर्ष की घटनाओं को वाणी दी है। उग्र की लेखन-शैली की विशेषता ओजपूर्ण शैली में दो टूक बात कहना है और ये विशेषताएँ उनकी आत्मकथा में भी परिलक्षित होती है। अपनी ख़बर लेना और अपनी ख़बर देना जीवनी साहित्य की दो बुनियादी विशेषताएँ हैं। उग्र जैसे लेखक की अपनी ख़बर उनके जैसे बेबाकी, साफगोई और जीवंत भाषा-शैली हिन्दी में आज भी दुर्लभ है। हिन्दी के आत्मकथा साहित्य में आज भी दुर्लभ है। हिन्दी के आत्मकथा साहित्य में अपनी ख़बर को मील का पत्थर माना जाता है। अपने निजी जीवनानुभवों, उद्वेगों और घटनाओं को इन पृष्ठों में उग्र जी ने जिस खुलेपन से चित्रित किया है, उनसे हमारे सामने मानव स्वभाव की अनेकानेक सच्चाइयाँ उजागर हो उठती हैं। यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि मनुष्य का विकास उसकी निजी अच्छाइयों-बुराइयों के बाजवूद अपने युग युग-परिवेश से भी प्रभावित होता है। यही कारण है कि आत्मकथा-साहित्य व्यक्तिगत होकर भी सार्वजनीन और सार्वकालिक महत्व रखता है।

विक्रमीय संवत के 1957 के वर्ष के पौष शुक्ल अष्टमी की रात साढ़े आठ बजे पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र का जन्म यू.पी. के मिर्जापुर जिले के चुनार तहसील के सद्दूपुर नामक मुहल्ले में हुआ। आपके पिता का नाम बैजनाथ पाण्डेय और माता का नाम जयकली था। आपका जन्म एक सरयूपारीण ब्राह्मण परिवार में हुआ। उग्र जी के पिता तेजस्वी वैष्णव हृदय के थे किन्तु माता ब्राह्मणी होने के बावजूद उग्र एवं क्षत्राणी स्वभाव की थी। आप के बहुत से भाई बहन पैदा हुए किन्तु अधिकतर पैदा होते ही भगवान को प्यारे हो गए। उनके अच्छे नाम रखे गए किन्तु वे अधिकतर दगा दे गए अर्थात मर गए। अंत में उग्र जी का जन्म हुआ। सर्वप्रथम तो उन्हें बेच दिया गया और उस पैसे का गुड़ मँगाकर उनकी माँ ने खा लिया। इसी कारण से उग्र का नाम 'बेचन शर्मा उग्र' पड़ा। यह नाम अधिकतर निम्नवर्गीयों में प्रचलित था।

उग्र जी एक गरीब परिवार में पैदा हुए। इनके जन्म के कुछ दिन बाद ही उनके पिता का स्वर्गवास हो गया। पिता की मृत्यु के बाद वे अपने बड़े भाई की निगरानी में रहने लगे।

उनके भाई पढ़े-लिखे नहीं थे किन्तु बुद्धि के बड़े तेज थे। हिन्दी, बंग्ला, संस्कृत के वे ज्ञाता थे। थोड़ा बहुत ज्योतिषी में भी ज्ञान प्राप्त था। उग्र जी एक ब्राह्मण परिवार से थे। इनका घर भी ब्राह्मणों के मोहल्ले में ही था। इनके घर की आर्थिक स्थिति बहुत ही खराब थी। इसलिए बहुत से लोग गरीब और ब्राह्मण जानकर उनके घर भीख पहुँचा जाते थे। उग्र जी का कहना था कि जजमानी वृत्ति एक सही काम नहीं था। इसमें स्वयं नीचातिनीच होकर भी दूसरों से चरण पूजवाना रह गई थी। यह केवल एक आडम्बर मात्र रह गया था। लोग धर्म से दूर होते जा रहे थे।

पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र की आत्मकथा 'अपनी खबर' में जाति प्रथा की भी निंदा की गई है। इनका कहना है कि उच्च और निम्न जाति में भेद करना गलत है। प्रारंभ में सभी नीच कुल से ही उत्पन्न होते हैं। उग्र के घर की आर्थिक स्थिति बहुत खराब थी। इसी कारण वे आगे की शिक्षा पूरी नहीं कर सके। उनके भाई साहब के कारण घर का माहौल कुछ अलग तरह का ही रहता था।

उग्र के घर में उनके भाई के कारण जुए का खेल होता था। पिता के नहीं रहने के कारण वेश्या को भी घर में रखा गया था। मुहल्ले के मनचले ब्राह्मण युवक उस वेश्या से मिलने उनके घर आते। उनकी माता और भाभी यह सब देखकर रोने लगती थी। जुए की बुरी लत के कारण उनके भाई ने अपने पत्नी तथा माता के गहने तक बेच डाले। अंत में घर के बर्तनों की बारी आई। वे भी बिक गए। जिसने भी अपना संचय सौंपने में जरा भी हिचक दिखलाई उसे भाई साहब जूतों, थप्पड़ों, घूंसों लातों से मारते। अक्सर ये शराब और गाँजेके नशे में होते थे। पूरा परिवार कर्ज में डुबा रहता था। एक बार पुलिस ने छापा मारा और सारे जुआरियों को पकड़ लिया और हवालात में बंद कर दिया। बहुत दिनों के बाद पचास रुपए के जुर्माने पर भाई साहब छूटे।

उग्र और उनके भाई रामलीला मंडलियों में एक्टिंग करने लगे। उस कारण से कुछ पैसा आने लगा। रामलीला मण्डली में भी उग्र जी के बड़े भाई उग्र पर खूब रोब जमाते थे। उन्हें अक्सर जानकी, लक्ष्मण और भरत का पार्ट रामलीला मण्डली में करने को दिया जाता था। उग्र की औपचारिक स्कूली शिक्षा नहीं हुई थी। उन्होंने पढ़ना लिखना भी रामलीला में ही सीखा। रामायण के विविध अंश उन्हें कंठस्थ थे। एक बार अचानक से उन्हें भरत का पार्ट करना पड़ा किन्तु उग्र ने इस रोल को बखूबी निभाया। इस कारण उनके वेतन में भी वृद्धि हुई। उनके भाई साहब भी बहुत प्रसन्न हुए। इन दोनों भाइयों के रामलीला मण्डली में काम करने से घर की आर्थिक दशा में कुछ सुधार आया। उनके बड़े भाई साहब कुछ पेसा घर भी भेजा करते थे।

8.4 पाठ की उप्लब्धियाँ

इस इकाई के अध्यन से निम्नलिखित महत्वपूर्ण बिंदु निष्कर्ष के रूप में प्राप्त हुए हैं |

1 अपनी खबर आत्मकथा पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र की आत्मकथा है

2 अन्य गध विधाओं के साथ आत्मकथा भी भार्त्देंदुन्युग में विकसित हुई

3 आत्मकथा स्वानुभूति का सबसे सरल माध्यम है

4 आत्मकथा के द्वारा लेखक अपने जीवन के सभी पहलुओं को पाठकों के सम्मुरत प्रस्तुत करता है

5 हिंदी की प्रथम आत्मकथा बनारसी दास जैन कृत “अर्धकथानक” है

6 बेचन शर्मा की लेखन शैली की विशेषता है किओजपूर्ण शैली में दो टूक बात कहना जो उनकी आत्मकथा में दिखाई देती है

7 इस आत्मकथा में परिवार की गरीबी का भि चित्रण किया गया है

8.5 शब्द सम्पदा

अख़बार-नवीसी	-	समाचार लेखन
अफ़साना नवीसी	-	कहानी लेखन
मुकाम	-	जगह
दुर्भाग्य	-	बदकिस्मत
जनरेशन	-	पीढ़ी
गलतीवश	-	भूल से
स्लो पायज़न	-	धीमा ज़हर
अनगढ़ता	-	बिना गढ़ा हुआ
अक्षराम्भ	-	पढ़ने लिखने की शुरूआत
बेसबब	-	बेवजह - बिना कारण
दुरूपयोग	-	बर्बाद
निस्संकोच	-	बगैर हिचकिचाहट
फिरदौस	-	जन्नत
फिज़ा	-	मौसम - वातावरण

8.6 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए

1. आत्मकथा की विकास यात्रा का विवेचन कीजिए।
2. ‘अपनी ख़बर’ के माध्यम से उग्र जी के परिवार की आर्थिक स्थिति पर चर्चा कीजिए।
3. ‘अपनी ख़बर’ आत्मकथा में उग्र जी के परिवेश की सामाजिक परिस्थितियों का वर्णन कीजिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए

1. ‘अपनी ख़बर’ के माध्यम से रामलीला मण्डली का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।

2. स्वतंत्रता पूर्व युग में आत्मकथा के विकास पर प्रकाश डालिए।

3. स्वतंत्रयोत्तर युग में आत्मकथा के विकास पर प्रकाश डालिए।

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए

(1)हिंदी की प्रथम आत्मकथा है ( )

(क)अर्धकथानक (ख) जीवन चरित्र (ग) तरुण के स्वप्न (घ) अतीत के चलचित्र

(2)निम्नलिखित में से दलित आत्म्कथाकार है ( )

(क)राहुल संक्रित्यायन (ख) मोहनदास नैमिशराय (ग) ओमप्रकाश वाल्मीकि (घ) ख एवं ग

(3) अपनी खबर किसकी आत्म कथा है ( )

(क) विष्णुप्रभाकर (ख) कमलेश्वर (ग) बेचन शर्मा (घ) योगी हरी

II रिक्त स्थान की पूर्ति किजए

(1)“ बसेरे से दूर” के लेखक ....हैं

(2)बनारसीदास कृत हिंदी की प्रथम आत्मकथा..................है

(3) “अपनी खबर” आत्मकथा का रचनाकार ....है

III सुमेल किजए

आत्मकथा	**लेखक**
(1)सिकंजे का दर्द	श्यामसुंदर दास
(2) मेरी आत्म कहानी	राहुल सांकृत्यायन
(3) मेरी जीवन यात्रा	शुशीला टाकभौरे

8.7 पठनीय पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, संपादक : डॉ. नगेंद्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
2. हिन्दी का गद्य-साहित्य, डॉ. रामचन्द्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
3. गद्य की नई विधाओं का विकास - प्रो. माजदा असद, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली-2

इकाई 11 : 'रंगभूमि' : कथानक

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 मूल पाठ 'रंगभूमि' : कथानक
11.3.1 उपन्यास की परिभाषा और विकास यात्रा
11.3.2 प्रेमचंद व्यक्तित्व और कृतित्व
11.3.3 प्रेमचंद उपन्यासकार के रूप में
11.3.4 'रंगभूमि' : कथानक
11.3.5 'रंगभूमि' कथानक का मूल उद्येश्य
11.4 पाठ सार
11.5 पाठ की उपलब्धियाँ
11.6 शब्द संपदा
11.7 परीक्षार्थ प्रश्न
11.8 पठनीय पुस्तकें

11.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई 'रंगभूमि : कथानक' को आपके पाठ्यक्रम में आपके अध्ययन हेतु रखा गया है ताकि उपन्यास सम्राट प्रेमचंद द्वारा लिखित इस महत्वपूर्ण उपन्यास की विस्तृत जानकारी आप सब प्राप्त कर सके। प्रेमचंद की औपन्यासिक कला को उनकी युगीन पृष्ठभूमि में ही भलीभाँति समझा जा सकता है। युगीन परिवेश में ही उनके उपन्यास शिल्प का उदय और विकास हुआ है। अपने पूर्ववर्ती उपन्यासकारों से निःसंदेह उन्हें उपन्यास रचना की प्रेरणा मिली, किन्तु युग-जीवन के परिवेश में उन्होंने उपन्यास-शिल्प को जो अभिनव स्वरूप प्रदान किया, उससे वे असंदिग्ध रूप से युग-प्रवर्तक बन गए। अतः नाट्य-कला के क्षेत्र में जिस प्रकार जयशंकर प्रसाद ने एक अभिनव दिशा एवं दृष्टि का पथ प्रशस्त किया, उसी प्रकार प्रेमचंद जी ने भी कथा-साहित्य को अभिनव प्राणों से स्पंदित किया। और उपन्यास के क्षेत्र में भी उन्होंने युग-स्थापना का कार्य किया।

11.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से आप-

- संक्षेप में उपन्यास की परिभाषा और उसकी विकास यात्रा का ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- मूल पाठ में आप रंगभूमि : कथानक की जानकारी विस्तार से प्राप्त करेंगे।
- रंगभूमि उपन्यास की अंतर्कथाओं का भी आप ज्ञान प्राप्त करेंगे।

11.3 मूल पाठ 'रंगभूमि' : कथानक

11.3.1 उपन्यास की परिभाषा और विकास यात्रा

हिन्दी के लिए उपन्यास शब्द नया नहीं है। यद्यपि उसका जो समकालीन रूप है व एकदम नया है। और अंग्रेजी के माध्यम से हिन्दी में आया है। संस्कृत में उपन्यास शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग भरत मुनि ने नाट्य शस्त्र में नाट्य विश्लेषण के संदर्भ में 'पताका' स्थानक के चतुर्थ भेद और प्रतिमुख संधि के अंग विशेष के रूप में किया है। हिन्दी का उपन्यास विराट कथा रूप है जो भारत की विपुल कथा परंपरा से नहीं जुड़ता। हिन्दी में उपन्यास शब्द अंग्रेजी के नॉवेल का पर्यायवाची है। 'नॉवेल' का अर्थ है - 'नया'। इसे 'फिक्शन' भी कहा जाता है। 'फिक्शन' का अर्थ गल्प होता है जो जीवन के रंगीनियों से युक्त यथार्थ से सम्बद्ध होता है।

क्लारा रीव ने उपन्यास के बारे में कहा है, 'उपन्यास अपने युग का चित्रण करता है। रोमांस उदात्त भाषा में उसका वर्णन करता है, जो न घटित है और न घटायमान। उपन्यास दैनिक जीवन में घटित होनेवाली घटनाओं का वर्णन करता है जिनका हमारे और हमारे मित्रों के जीवन में घटित होना संभव हो।'

क्रोसे के अनुसार, 'उपन्यास से अभिप्राय उस गद्यमय गल्प-कथा से है, जिसमें वास्तविक जीवन का यथार्थ चित्रण रहता है'। प्रेमचंद ने उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्रण मानते हुए लिखा है, 'मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके मूल रहस्यों को खोलना ही उपन्यास है'।

डॉ. श्यामसुंदर दास के अनुसार, 'उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है'।

हिन्दी-उपन्यास अपनी शैलीगत विशिष्टता की दृष्टि से भले ही पाश्चात्य साहित्य विशेष रूप से अंग्रेजी-साहित्य के संपर्क और प्रभाव से हिन्दी साहित्य में आया हो किन्तु अपने कथा-तत्व की प्रमुखता की दृष्टि से उपन्यास की भारतीय परंपरा भी अत्यंत प्राचीन है। ऋग्वेद की जातक कथाएं, यम-यमी-संवाद, पुरुरवा-उर्वशी-संवाद आदि में पर्याप्त कथा-तत्व है। इन्हें इतिहास नहीं कहा जा सकता। इनके वर्णन में जो रोचकता और कल्पना का गुण पाया जाता है वह इन्हें उपन्यास के निकट ही ले जाता है। कहने का अभिप्राय यह है कि प्राचीन साहित्य में चाहे वह संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश किसी का भी हो कथा-साहित्य का अभाव नहीं है। इस कथा-साहित्य के द्वारा प्राचीन कथाकारों ने मानव-जीवन के अनेक रहस्यों, सत्यों और उलझनों को प्रस्तुत करने के साथ ही साथ इनके समाधान पर भी प्रकाश डाला है।

आधुनिक कल में जिस समय हमारे देश में पाश्चात्य साहित्य और संस्कृति के संपर्क के कारण राष्ट्रीय जागरण की देशव्यापी लहर उत्पन्न हो रही थी और राष्ट्रीय जागरण में अपने उत्तरदायित्व की महती भूमिका निभाने के लिए हिन्दी गद्य-पद्य और उसकी विभिन्न विधाओं का जन्म हो रहा था, उसी समय हिन्दी-गद्य की अन्य विधाओं के साथ-साथ उपन्यासों का भी सूत्रपात हुआ। हिन्दी उपन्यास के इस विकास-यात्रा को हम तीन भागों में बाँट सकते हैं-

(क) प्रथम चरण

हिन्दी उपन्यासों का आरंभ बांग्ला और मराठी भाषा क उपन्यासों के अनु से आरंभ होता है। यद्यपि बांग्ला और मराठी भाषा का साहित्य भी हिन्दी साहित्य की ही भाँति आरंभ में पद्यमय था, किन्तु उन भाषाओं में हिन्दी-भाषा की अपेक्षा गद्य-साहित्य का आरंभ अपेक्षाकृत पहले आरंभ हुआ। हिन्दी सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास का होने का श्रेय श्रीनिवास दास को प्राप्त होता है सन् 1882 में मौलिक उपन्यास 'परीक्षा गुरु' का प्रकाशन हुआ। श्रीनिवास दास जी के बाद अनेक दूसरे उपन्यासकारों ने भी उपन्यास रचना का काम प्रारंभ किया। इस काल के दूसरे प्रमुख उपन्यास नूतन ब्रह्मचारी, सौ अजान और एक सुजान, लवंग लता, कुसुम कुमारी आदि है। यहाँ गोपाल राम गहमरी का नाम लेना बहुत आवश्यक हो जाता है। उन्होंने जासूसी और ऐयारी से संबंधित उपन्यासों की रचना की। यह हिन्दी साहित्य की बहुत बढ़ी उपलब्धि थी। "चंद्रकांता' ऐसी ही उपन्यास है।

प्रथम वर्ग के उपन्यासों में तत्कालीन समाज की बदलती हुई परिस्थितियों में नए आदर्शों का वर्णन प्राप्त होता है साथ ही साथ कल्पित राजवर्ग और उससे संबंधित जासूसी, षड़यंत्र, ऐयारी आदि का वर्णन भी देखने को मिलता है।

(ख) द्वितीय चरण

हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रेमचंद के पदार्पण के साथ ही उपन्यास साहित्य के द्वितीय चरण का कायाकल्प हो जाता है। प्रेमचंद ने एक नई राष्ट्रीय चेतना लेकर उपन्यास लिखना प्रारंभ किया था। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन और राष्ट्रीय चेतना ने एक संगठित शक्ति का रूप ग्रहण कर लिया था इस शक्ति को और अधिक प्रज्वलित प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों के द्वारा किया। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में निम्न वर्ग, माध्यम वर्ग, किसान वर्ग और मजदूर वर्ग के जीवन की आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक आदि समस्याओं को स्थान प्रदान किया और साथ ही इन समस्याओं का निवारण कैसे हो इसका आदर्शात्मक समाधान प्रस्तुत किया। गोदान, गबन, रंगभूमि, कर्मभूमि, सेवसादन आदि प्रेमचंद द्वारा लिखित प्रमुख उपन्यास है। इस युग के दूसरे प्रमुख उपन्यास रहें – कंकाल, तितली, विमाता, अमर अभिलाषा, वैशाली की नगरवधू, परख, सुनीता, अप्सरा, बिल्लेसुर बकरिहा आदि।

द्वितीय चरण के उपन्यासकारों ने मानव जीवन की समस्यायों को जागृत करने के साथ ही साथ मनोविश्लेषण को भी अपनी उपन्यासों का विषय बनाया। इस चरण के उपन्यासों में सामाजिक, पारिवारिक कुंठाओं को भी स्थान मिला। समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार का नग्न चित्रण उपन्यासों के द्वारा किया गया।

(ग) तृतीय चरण

प्रेमचंद की सजग सामाजिक जीवन के चित्रण की परंपरा को अधिक यथार्थवादी रूप में लेकर लिखी जानेवाली प्रगतिवादी विचार धारा को हिन्दी उपन्यास साहित्य के तृतीय चरण के

रूप में स्वीकार करना उचित कार्य है। प्रगतिवादी उपन्यासों में मजदूरों, किसानों और माध्यम वर्ग के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक संघर्षों का चित्रण देखने को मिलता है। इनमें निम्न वर्ग की उभरती शक्ति और चेतना को मुखरित किया गया है। पिछले कई दशक में हिन्दी-उपन्यास ने अभूतपूर्व उन्नति की है। शिल्प और चेतना दोनों ही दृष्टियों में कई नए प्रयोग किया गए है। और यह सभी प्रयोग सफल भी हुए है। आज देश-काल उपन्यास में वर्णित घटनायों की पार्श्वभूमि न रह कर उपन्यास के पात्रों का अवयव बनकर पाठकों के समक्ष आता है। 'आज उपन्यास का ध्येय हो गया है, कथा कहना और उसे सीमित रूप में कहना। उपन्यासकार-देश काल का विस्तृत वर्णन करने से अथवा सिनेमा का फोटोग्राफर बनने से और मनोविज्ञान का विशेषज्ञ बनने से भयभीत होता है'।

बोध प्रश्न

- संस्कृत में उपन्यास शब्द का सबसे पहला प्रयोग किया था?
- 'परीक्षा गुरु' का रचनाकाल क्या है?
- 'चंद्रकांता' के रचयिता कौन है?

उपन्यास के तत्व

मुंशी प्रेमचंद उपन्यास को मानव जीव का इतिहास मानते थे। उपन्यास कथा-साहित्य का चरम विकास है। 'जो हो चुका हो', उसे उलट-पुलटकर और कल्पना का रंग देकर उपन्यासकार 'जो हो सकता है' की संभावना व्यक्त करता है। इस प्रक्रिया को पूरी करने के लिए उपन्यासकार 6 तत्वों का सहारा लेता है। ये 6 तत्व कौन से हैं? आइए उनकी जानकारी हम प्राप्त करें -

कथानक अथवा कथावस्तु

कथानक शब्द का अंग्रेजी रूपांतरण होगा-'PLOT'। उपन्यास का कथानक ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक आदि कुछ भी हो सकता है। उपन्यास में केवल एक ही कथानक मुख्य आवेश होता है लेकिन उस मुख्य कथानक को आगे बढ़ाने के लिए अर्थात, गति प्रदान करने के लिए अनेक सहायक कथाओं का सहारा लिया जाता है। इस प्रकार की कथाओं को 'सहायक कथानक' कहा जाता है। उपन्यास के कथानक में गतिशीलता होने के साथ ही साथ उत्सुकता का होना भी बहुत आवश्यक है। उपन्यास के कथानक में पारस्परिक संबद्धता, वैचारिक मौलिकता, घटनात्मक सत्यता, शैलीगत निर्माण-कौशल, वर्णनात्मक रोचकता के गुणों का रहना बहुत आवश्यक है।

पात्र एवं चरित्र चित्रण

कहानी की तुलना में उपन्यास में पात्रों की संख्या अधिकतर अधिक ही देखी जाती है। लेकिन आजकल कुछ आधुनिक उपन्यासकार कम पात्रों को लेकर भी उपन्यास रचना का काम

कर रहे हैं। चूँकि, उपन्यास लंबे होते हैं इसलिए यहाँ पात्रों को अपने चरित्र को विकसित करने का बहुत अच्छा अवसर मिलता है।

कथोपकथन अथवा संवाद योजना

यह तत्व वैसे तो नाटक का महत्वपूर्ण यंग है लेकिन उपन्यास में भी संवाद योजना का महत्व कम नहीं है। उपन्यासों के संवाद संक्षिप्त, सरल और स्वाभाविक होने चाहिए। लंबे संवाद अस्वाभाविक प्रतीत होने लगते हैं। उपन्यासकार किसी भी घटना अथवा गतिविधि का स्वयं वर्णन कर सकता है इसके लिए पात्रों के संवाद योजना की आवश्यकता नहीं पड़ती। उपन्यासों की संवाद योजना में मनोवैज्ञानिकता के साथ-साथ उद्देश्य का रहना भी आवश्यक है।

भाषा शैली

उपन्यास की भाषा उसके प्रकार पर निर्भर करती है। अर्थात, जिस पृष्ठभूमि को लेकर उपन्यास लिखा जाता है भाषा शैली भी उसी प्रकार की होती है। प्राचीन उपन्यासकार भाषा की शुद्धता पर अधिक ध्यान देते थे, आजकल के अधिकांश उपन्यासकार सरल भाषा में लिखा करते हैं। उपन्यास की भाषा शैली कहानी के समान अनेक प्रकार की हो सकती है।

देशकाल और वातावरण

उपन्यासकार के पास स्थान और समय की न्यूनता नहीं होती। वह विस्तार से देश और काल का परिचय दे सकता है। वातावरण की सफलता इसी में है कि उपन्यास पढ़नेवाला स्वयं को उसी वातावरण से घिरा समझने लगे, जिसका निर्माण उपन्यासकार ने किया है। वातावरण सामाजिक, पारिवारिक, ग्रामीण, राजनीतिक आदि किसी भी प्रकार का हो सकता है।

उद्देश्य

उपन्यास की रचना में लेखक का कोई न कोई उद्देश्य छिपा रहता है। पहले आदर्शवादी उपन्यास ही अधिक लिखे जाते थे। आजकल के अधिकतर उपन्यास यथार्थवादी हुआ करते हैं। कुछ उपन्यासकार ऐतिहासिक परिवेश में वर्तमान काल की समस्याओं का समावेश कर देते हैं।

शीर्षक

कहानी के समान ही उपन्यास का शीर्षक भी महत्वपूर्ण होता है। जिस प्रकार शीश से मनुष्य पहचाना जाता है, उसी प्रकार शीर्षक उपन्यास की पूर्ण पहचान बनाता है।

ऊपर दिए गए वर्णना के आधार पर उपन्यास के तत्वों का गहन विश्लेषण हम कर चुके हैं।

बोध प्रश्न

- उपन्यास को प्रेमचंद क्या मानते थे?
- कथानक शब्द का अंग्रेजी रूपांतर क्या है?

11.3.2 प्रेमचंद व्यक्तित्व और कृतित्व

प्रेमचंद जी का जन्म सन् 1880 में बनारस के लमही नामक गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम अजायब राय और माता का नाम आनंदी देवी था। प्रेमचंद जब 8 वर्ष के थे तभी उनकी माता का का देहांत हो गया। घर में विमाता का प्रवेश हुआ। विमाता उन पर अत्याचार किया करती थी। बालक अपने जीवन के दुखों को भूलने के लिए बहुत छोटी उम्र में ही साहित्य रचना करने लगे थे। प्रेमचंद के बचपन का नाम धनपतराय था, किन्तु उनके चाचा नवाबराय बुलाते थे। प्रेमचंद का विवाह 15 साल की अवस्था में ही हो गया था। लेकिन उनका दाम्पत्य जीवन सुखी नहीं हो सका। प्रेमचंद जी ने पहले अध्यापक के रूप में काम करना शुरू किया फिर सब-डिप्टी-इंस्पेक्टर के रूप में भी काम किया। गांधी जी के विचारों से प्रभावित होकर उन्होनें सरकारी नौकरी से त्याग पत्र दे दिया। इसके बाद से उन्होंने साहित्य साधना को ही अपने जीवन का प्रमुख लक्ष्य बना लिया।

प्रेमचंद ने सबसे पहले उर्दू में साहित्य रचना का काम शुरू किया था। सन् 1901-1915 तक का समय प्रेमचंद की उर्दू रचनाओं के लिए बहुत महत्वपूर्ण रहा। सन् 1901 में उन्होंने उर्दू में 'प्रेमा' नामक उपन्यास को लिखा। सन् 1904 से उन्होनें कहानी रचना का कार्य भी प्रारंभ कर दिया। इसके बाद उन्होंने 4-5 कहानियों की एक और संग्रह प्रकाशित की। जिसका नाम था 'सोजे वतन'। इस संग्रह में राष्ट्रीयता की भावना मुखर थी, इसलिए इस संग्रह की समस्त रचनाएं सरकार ने ज़ब्त करवा ली और उन्हें जला डाला। सन् 1907 में उनकी प्रथम कहानी 'संसार का अनमोल रत्न' उर्दू के प्रसिद्ध पत्र 'जमाना' में प्रकाशित हुई। प्रेमचंद उर्दू में नवाबराय के नाम से लिखा करते थे। हिन्दी में प्रेमचंद नाम से ही लिखा करते थे। हिन्दी में उनका पहला कहानी संग्रह 'सप्त सरोज' के नाम से प्रकाशित हुआ। प्रेमचंद जी केवल साहित्यकार ही नहीं थे बल्कि बहुत अच्छे संपादक भी थे। मर्यादा, माधुरी, हंस, जागरण नामक पत्रिकाओं का सफल सम्पादन किया था। 'हंस' के कारण से उन्हें हिन्दी सिनेमा जगत में प्रवेश करने का अवसर भी प्राप्त हुआ, लेकिन फिल्म जगत में उन्हें सफलता प्राप्त नहीं हुई। सन् 1936 में उनकी मृत्यु हुई।

बोध प्रश्न

- प्रेमचंद के पिता का नाम क्या था?
- प्रेमचंद की मत का नाम क्या था?
- सोज़े वतन को अंगेजओन ने क्यों ज़ब्त कर लिया?

11.3.3 प्रेमचंद उपन्यासकार के रूप में

प्रेमचंद को हिन्दी उपन्यास साहित्य का प्रवर्तक माना जाता है। इसी कारण से उनके समय को 'प्रेमचंद युग' के नाम से भी जाना जाता है। प्रेमचंद साहित्य को जीवन की व्याख्या एवं आलोचना स्वीकार करते थे तथा उपन्यासों को मानव जीवन का महाकाव्य समझते थे। प्रेमचंद के उपन्यासों की मूल प्रेरणा सामाजिक कल्याण की भावना है। उनके कथानकों में मानव के समसामयिक जीवन का चित्रण मिलता है। व्यक्ति ही समाज का रूप धरण कर लेता है, अतः सामाजिक समस्याएं अंततः व्यक्ति की अपनी ही समस्याएं बन जाती है। यही कारण है कि

सामाजिक जीवन से निकटतः संबंध होने पर भी प्रेमचंद के कथानक व्यक्ति की अवहेलना नहीं करते। प्रेमचंद ने अपने युग की समस्याओं को भलीभाँति समझा था। उनका युग पुनरुत्थानवादी था। देश में ऐसी संस्कृति का विकास हो रहा था, जिसकी चकाचौंध से प्रभावित होकर समूची पीढ़ी भी चली जा रही थी। देश में पूंजीवाद का बोलबाला हो गया था और वर्ग- वैषम्य जीवन के प्रत्येक स्तर पर परिलक्षित होता था। प्रेमचंद एक जागरूक कलाकार थे। उन्होंने इन सभी समस्याओं का गहन अध्ययन किया और अपने उपन्यासों में उनको स्थान प्रदान किया है। प्रेमचंद का कहना था कि जिस साहित्य से हमारी सुरुचि न जागे, आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति न मिले, हमारा सौन्दर्य प्रेम न जाग्रत हो, जो हमें सच्चा संकल्प और कठिनाईयों पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता न प्रदान करें, वह हमारे लिए बेकार है, वह साहित्य कहलाने का अधिकारी नहीं है। उनकी स्पष्ट घोषणा थी, 'मुझे यह कहने में हिचक नहीं की मैं और चीजों की तरह कला को उपयोगिता की तुला पर तोलता हूँ। कलाकार अपनी कला में सौन्दर्य की सृष्टि करके परिस्थिति को विकास के लिए उपयोगी बनाता है'।

प्रेमचंद ने उपन्यास को जीवन का चित्रण माना है। प्रेमचंद के सभी उपन्यासों का कथाधार मानव-जीवन है। प्रेमचंद के उपन्यासों के पात्र इस धरती के ही पुत्र है। मानवीय गुण-दोषों से वे युक्त हैं। उनकी मनोदशा तथा उनके कार्यकलापों से हमारा तादात्म्य होता रहता है। अधिकांश पात्र ग्रामों के शोषित कृषक और पूँजीपतियों द्वारा त्रसित है। प्रेमचंद ने पात्रों की मुद्रा मनःस्थिति, मन के रहस्यों, पात्र के स्वभाव, विचारधारा आदि में परिवर्तन को भी अपने शब्दों में प्रकट किया है। एक प्रकार से उनके उपन्यासों का कथानक तात्कालिक सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन का इतिहास है।

प्रेमचंद युग-जीवन की समस्याओं और उनके समाधानों को अपने उपन्यासों के द्वारा समाज के सामने लाना चाहते थे। उन्होनें यथार्थ के बीच से आदर्श को झाँककर देखा था। ऐसा साहित्य जिससे मानवकल्याण न हो, उनकी दृष्टि में व्यर्थ था। अपने साहित्य-सृजन-विषयक उद्देश्य के संबंध में उन्होनें स्वयं लिखा है, 'साहित्य का सबसे ऊँचा आदर्श यह है कि उसकी रचना केवल कला की पूर्ति के लिए की जाए।.......पर कला के लिए कला का समय वह होता है, जब देश सम्पन्न और सुखी हो। जब हम देखते हैं कि मानव भाँति-भाँति के राजनीतिक और सामाजिक बंधनों में जकड़े हुए हैं, जिधर निगाह उठती है , दुख और दरिद्रता के भीषण दृश्य दिखाई देते हैं, विपत्ति का करूण क्रंदन सुनाई देता है, तो कैसे संभव है कि किसी विचारशील प्राणी का हृदय पिघल न उठे'।

प्रेमचंद ने जीवनी-लेखकों के आधार पर श्री महावीर प्रसाद पोद्दार की प्रेरणा से 'सेवासदन' नामक उपन्यास को हिन्दी में लिखा और तब से वे निरंतर लिखते चले गए। इसके पश्चात उन्होंने रूठी रानी, वरदान और प्रतिज्ञा आदि उपन्यासों को लिखा। सन् 1900-1906 के बीच में इन रचनाओ को रचा गया। सेवासदन उनकी तीसरी औपन्यासिक रचना है जिसे गोरखपुर में सन् 1916 में प्रकाशित किया गया। सेवासदन का उर्दू रूप 'बाजार-हुस्न' लाहौर से सन् 1911 के मध्य में दो किश्तों में प्रकाशित हुआ था। डॉ. कमल किशोर गोएनका के शब्दों में कहा

जा सकता है कि, 'सेवासदन के एक बेहतरीन नॉवेल होने का एक कारण यह भी है कि लेखक एक प्रचारात्मक लेखक के रूप में न आकर एक कलाकार के रूप में सामने आता है'। नारी को यदि वास्तविक शिक्षा नहीं मिलती तो उसे कितनी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। 'सेवासदन' की नायिका सुमन के माध्यम से प्रेमचंद ने इस सच्चाई को प्रस्तुत किया है। हमारे समाज के मठाधीश, समाजसुधारक, धनपति आदि करने को तो बड़ी-बड़ी बातें करते हैं लेकिन किसी भी समस्या का व्यावहारिक समाधान वे कभी नहीं निकालते। इस पर प्रेमचंद ने तीव्र व्यंग्य किया है। 'प्रेमाश्रम' में प्रेमशंकर के माध्यम से जमींदारी उन्मूलन, भूमिधरी, सहकारिता आदि की कल्पना की गई है। इस उपन्यास में सामंती व्यवस्था का खोखलापन प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास का मूल सार ही है, 'भूमि उसकी है, जो उसे जोते'। 'निर्मला' प्रेमचंद के द्वारा लिखित सामाजिक यथार्थ पर आधारित उपन्यास है। इसमें उन्होनें दहेज प्रथा, अनमेल विवाह जैसी कुत्सित प्रवृत्तियों पर व्यंग्य किया है। 'कर्मभूमि' में यों तो अनेक समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है लेकिन प्रस्तुत उपन्यास का मुख्य उद्देश्य है- स्वदेशानुराग उत्पन्न करना। भारत के राजनीतिक और सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्र प्रेमचंद द्वारा जिस तरह सामने आया, यह बात साहित्यकारों को असंभावित सी ही लगी। उनके उपन्यासों में आदर्शोन्मुख यथार्थ के चित्रण के द्वारा जीवन संघर्ष और चेतन-जगत के सुंदर समन्वय हुआ है। 'गोदान' तक आते-आते उनका लेखन कौशल और अधिक प्रौढ़ हो गया था। उनका 'गोदान' भारत के समाज का यथार्थ और सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत करनेवाला महाकाव्य है। 'गोदान' दुखी एवं शोषित मानवात्मा का करुण क्रंदन है। पत्रकारों की स्वार्थलिप्सा, सामंतशाही एवं धर्म का खोखलापन, शोषण, संयुक्त परिवार व्यवस्था, वर्णव्यवस्था की विश्रृंखलता आदि विभिन्न समस्याएं इसमें अत्यंत विस्तृत पृष्ठभूमि में चित्रित की गई है। प्रेमचंद के महत्व को प्रस्तुत करते हुए कहा गया है, 'गोदान के रचयिता प्रेमचंद जी हिन्दी के वर्तमान और भविष्य के निर्देशक है। प्रेमचंद उस शिखर के समान है, जिसके दोनों और पर्वत के दोनों भागों के उतार-चढ़ाव है।

प्रेमचंद को मानव जीवन का पर्याप्त अनुभ था। वे पुस्तकों की पाठशाला से न आकर जीवन की पाठशाला से साहित्य के क्षेत्र में आए थे। उन्होनें अपने युग को समझ था और परिवर्तनशीलता को आत्मसात किया था। साहित्यकार के रूप में उन्होनें कभी अपने दायित्व की अवहेलना नहीं की थी। यही प्रेमचंद की हठता थी और इसी कारण से उनका साहित्य विराट बन सका था। उपन्यासकार के रूप में प्रेमचंद ने हिंदी भाषा के परिनिष्ठित रूप को अपनाने के साथ ही साथ अशिक्षित पात्रों की भाषा में जहाँ स्थानीय तथा तद्भव शब्दों का प्रयोग किया है। अंतर्द्वंद्व के चित्रण में प्रेमचंद की भाषा को विशेष सफलता मिली है।

1.6 'रंगभूमि' : कथानक----- प्रेमचंद द्वारा लिखित 'रंगभूमि' उपन्यास अपने समय का महत्वपूर्ण उपन्यास है। इसकी रचना तिथि सन् 1924-25 है।

काशी के बाहरी भाग में पांडेपुर गाँव को 'रंगभूमि' की कथा स्थल बनाया गया है। ग्वाले, मजदूर, गाड़ीवान और खोमचेवालों की इस गरीब बस्ती में एक गरीब और अंधा चमार रहता है—सूरदास। वह है तो भिखारी परंतु पुरखों की 10 बीघा धरती भी

उसके पास है, जिसमें गाँव के ढोर विचरते हैं। सामने ही एक ख्याल का गोदाम है, जिसका आढ़ती है एक ईसाई ------ जॉन सेवक। वह सिगरा मुहल्ले का निवासी है। इस जमीन पर उसकी बहुत दिनों से निगाह है, वह इस पर सिगरेट का कारखाना खोलना चाहता है। सूरदास किसी भी तरह अपने पुरखों की निशानी उस धरती को बेचने के लिए जब राजी नहीं होता है तो जॉन सेवक अधिकारियों से मेल-जोल का सहारा लेकर उसके मन को बदलने का प्रयास करता है। जॉन सेवक की बेटी थी सोफिया। सोफिया के कारण से ही राजा भरतसिंह और उसके परिवार से जॉन सेवक का परिचय संबंध स्थापित हुआ। राजा साहब के परिवार में चार प्राणी थे---- पत्नी रानी जाह्नवी, पुत्री इंदु, पुत्र विनय और स्वयं राजा साहब। एक दिन अपने स्वयंसेवकों के साथ आग बुझाने का अभ्यास करते हुए आग की लपटों में फँस जाता है। संयोग से सोफिया अपनी माँ से झगड़ा कर उधर जा निकली थी। वह आग में कूदकर विनय को बचा लाई। आग ने उसे कई जगह झुलस दिया। विनय के माता-पिता सोफिया को अपने साथ ले गए और उसका इलाज कराया। वे उसके प्रति स्नेहासिक्त हो गये थे कि उसे अपने ही घर रखने के बारे में सोचने लगे। राजा साहब की बेटी इंदु, सोफिया की सहपाठिनी और सखी थी, उसका विवाह छतारी के राजा महेंद्र कुमार से हुआ था। राजा महेंद्र कुमार सिंह बनारस म्युनिसिपल बोर्ड के अध्यक्ष थे। इंदु के द्वारा महेंद्र कुमार जॉन सेवक और सोफिया को थोड़ा बहुत जानने-पहचानने लगे थे। जॉन सेवक ने इस संयोग का पूरा-पूरा लाभ उठाया। एक ओर उसने राजा भरत सिंह को अपने कारखाने के शेयर खरीदने के लिए राजी कर लिया तो दूसरी ओर राजा महेंद्र कुमार सिंह से सूरदास की जमीन दिलवा देने की हामी भी भरवा ली। उस समय बनारस का जिला-अधिकारी क्लार्क नाम का अंग्रेज था। वह सोफिया पर आसक्त था और उसके लिए सोफिया के माता-पिता को भी वह अपने पक्ष में कर चुका था। सोफिया उससे मिली और हठ कर के राजा महेंद्रकुमार के आदेश को रद्द करवाकर क्लार्क से आज्ञा जारी करवा दी कि सूरदास की जमीन किसी को नहीं मिल सकती। लेकिन राजा महेंद्र

कुमार ने गवर्नर से मिलकर सूरदास की जमीन जॉन सेवक के नाम करवा दी। क्लार्क का उदयपुर के लिए तबादला हो गया।

कारखाना निर्माण और उसके साथ ही मजदूरों के लिए घर बनाने का क्रम रखा गया। जमीन प्राप्त करने के बाद मजदूरों के लिए घर बनाने की आवश्यकता हेतु पांडेपुर बस्ती पर निगाह डाली गई। पांडेपुर बस्ती को खाली करवाया जाने लगा प्रांतीय सरकार से लिखा पारी हुई। बस्ती के लोगों को मुआवजा लेकर अपना अपना घर छोड़ देने के लिए कह दिया गया लेकिन सूरदास अड़ गया। झोंपड़ी के सामने ही उसने सत्याग्रह कर दिया। झगड़े ने आंदोलन का रूप धारण कर लिया। सूरदास की मदद के लिए इन्द्रदत्त, सोफिया और विनय आ गए। दूसरी ओर, आंदोलन को दबाने के लिए फौज आ धमकी। आंदोलन बढ़ता ही गया। गोलियां चलीं, इन्द्रदत्त शहीद हो गया।

सूरदास को गोली लगी और विनय जब मंच पर आया तो जनता ने उस पर व्यंग्य करना शुरु कर दिया। अशांत जनता को शांत करने के लिए तथा फौज की गोलियों से बचाने के लिए विनय ने अपनी ही रिवाल्वर से अपने साइन में गोली मार दी। इस आत्मबलिदान से हतप्रभ जनता ने आंदोलन को रोक दिया। सूरदास को अस्पताल पहुंचाया गया लेकिन वह नहीं बचा। जनता ने सूरदास की झोपड़ी के सामने ही उसकी मूर्ति स्थापित कर दी। राजा महेंद्र कुमार रात में उसे मिटाने के लिए जाते हैं और उस मूर्ति के नीचे ही दबकर मर जाते हैं। इस प्रकार राजा महेंद्र कुमार जीतकर भी हार जाते हैं और सूरदास हारकर भी विजय पा जाता है।

अति संक्षेप में हम 'रंगभूमि' की कथानक को इस प्रकार से समझ सकते हैं। 'रंगभूमि' की सृजन प्रक्रिया और उसकी आधारभूमि को समझने के लिए अंग्रेजों की व्यावसायिक नीति, मशीनी युग, औद्योगीकरण, शासन-नीति आदि क समझना होगा। प्रेमचंद औद्योगीकरण के पूर्णतः विरोधी नहीं थे। लेकिन अंग्रेज जिस प्रकार से भारतीयों के सर्वस्व को लूट रहे थे। इसका प्रेमचंद हमेशा विरोधिता करते रहे। 'रंगभूमि' के कथा-शिल्प की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि लेखक ने सूरदास की कथा में दूसरे पात्रों को संयुक्त करके उनके व्यक्तित्व के विकास से उनकी व्यक्तिगत कथा को भी विकसित किया है। 'रंगभूमि' में कथा शिल्प को विकसित करने के लिए लेखक ने संकेत विधि का पर्याप्त उपयोग किया है। इसके लिए लेखक ने पात्र के संकल्प, आशंका, भविष्यवाणी आदि से भावी-कथा का संकेत किया है। 'रंगभूमि' की कथा को सुसंबद्ध बनाने के लिए लेखक पूर्णतः सचेष्ट रहे। 'रंगभूमि' में पात्रों की संख्या 100 से भी अधिक है। इनमें से 45 के लगभग तो नामधारी पात्र हैं और शेष पात्रों को लेखक ने अनाम ही छोड़ दिया है।

बोधक प्रश्न

1. 'रंगभूमि' की रचना तिथि क्या है?
2. 'रंगभूमि' की कथा स्थल की पृष्ठभूमि कौन सा क्षेत्र है?
3. सूरदास के पास कितनी बीघा जमीन थी?
4. 'रंगभूमि' में पात्रों की संख्या कितनी है?

1.6.1 'रंगभूमि' के कथाक्रम का विकास------ 'रंगभूमि' की कथा को प्रेमचंद ने परिवार विशेष की कहानी कहते हुए तथा प्रमुख पात्रों का परिचय देना शुरू किया है। धीरे-धीरे कथा के भावी विकास के लिए सामग्री अर्थात विषय मिलने लगी और उपन्यास का विकास द्रुत गति से होने लगा। प्रेमचंद ने संकेत, भविष्यवाणी, समस्याओं के निराकरण आदि

जैसी तरह-तरह की विधियों को अपनाकर 'रंगभूमि' के कथानक को विकसित करने का प्रयास किया है। जैसे सूरदास का ताहिरअली के सामने यह संकल्प करना कि, 'मेरे जीते-जी तो जमीन न मिलेगी, हाँ मर जाऊँ तो भले ही मिल जाए'। पाठक को यह संकेत तो मिल जाता है कि जमीन के लिए संघर्ष अवश्य होगा। यह संकेत पाठक को आगे बढ़ने का रोमांच भी प्रदान करता है। 'रंगभूमि' के कथानक में पेचीदगियों, उलझनों तथा बाधाओं की भरमार है, किन्तु कथावस्तु का प्रवाह कहीं रुका नहीं है क्योंकि प्रेमचंद ने प्रत्येक समस्या का विस्तृत वर्णन किया है जैसे औद्योगीकरण की समस्या को ही लीजिए। यह समस्या ही सम्पूर्ण कथानक की रीढ़ है। सामंतवादी शोषण भी इसमें सम्मिलित है। एक और जॉन सेवक के हथकंडे है, तो दूसरी और सूरदास का संकल्प है। इस वैषम्य से भी कथानक आगे बढ़ती चली गई है। हमें यहाँ इस बात को ध्यान में रखना होगा कि प्रेमचंद ने 'रंगभूमि' उपन्यास में प्रमुख रूप से चार समस्याओं पर प्रकाश डाला है। ये समस्याएं उपन्यास की प्राणतत्व होने के साथ ही साथ कथानक की विकास प्रक्रिया के भी प्रमुख अंग है------- 'रंगभूमि' की पहली समस्या उद्योग और व्यवसाय से जुड़ी हुई है। इसमें पूंजीवाद को उन्होंने अपने लक्ष्य बने है। प्रेमचंद ने न केवल पूंजीवाद की भयंकर विभीषिका ही प्रस्तुत की है, वरन पूंजीवाद के कुछ दोष भी बताएं है, जिनकी और सहज ही ध्यान नहीं जाता। पूंजीवाद मनुष्य के जीवन को कुत्सित बना देता है और उसमें बुर्जुआ मनोवृत्ति भर देता है। प्रेमचंद ने इसकी तीव्र निंदा की है। दूसरी समस्या धार्मिक है। धार्मिकता को भी इस उपन्यास ने समस्या के रूप में अपना लक्ष्य बनाया है। जैसा प्रसाद जी ने अपने नाटकों में आवश्यकता से अधिक राष्ट्रीय उत्साह अभिव्यक्त किया है, उसी प्रकार से आवश्यकता से अधिक धार्मिक उत्साह इस उपन्यास में प्रेमचंद ने प्रकट किया है। सोफिया और विनय सिंह के माध्यम से धार्मिक स्वतंत्रता का पक्ष उन्होंने ग्रहण किया है। मिसेज सेवक की धार्मिक असहिष्णुता का विरोध सोफिया और प्रभु सेवक दोनों करते हैं। सोफिया घुटनशील वातावरण से निकलकर स्वतंत्र रूप से जीवनयापन करना चाहती है। वास्तव में प्रेमचंद का दृष्टिकोण भी यही रहा कि धार्मिक बंधनों से अधिक मानवतावाद को अधिक महत्व मिलना चाहिए। 'रणभूमि' उपन्यास के द्वारा उन्होंने स्थापित किया है कि ' मानव प्रेम के सम्मुख धर्म की सीमाएं मूल्यहीन है'। तीसरी समस्या देशी रियासतों की है। इन पर भी प्रेमचंद ने अपने राष्ट्रीय विचार प्रकट किया है। जसवंतनगर में रहते हुए विनय सिंह जिस प्रकार का जीवन बिता रहे थे, वह कदाचित तत्कालीन देशी रियासतों

की वास्तविक दश का ही सजीव चित्रण रहा। रियासतों का जीवन कितना प्रतिक्रियावादी हो गया था, अन्याय और शोषण कैसे चरमोत्कर्ष तक पहुँच गया था और साधारण जनता के लिए इन रियासतों के नीचे रहना कितना कष्टकर हो गया था इन सबका सजीव चित्रण 'रंगभूमि' में देखा जा सकता है। चौथी समस्या राजनैतिक है। प्रेमचंद का विश्वास था कि मनुष्य को सभी व्यक्तिगत कामनाओं और आकांक्षाओं से ऊपर उठकर निःस्वार्थ भाव से राष्ट्र-सेवा का व्रत लेना चाहिए। वे जाति को, समाज को, देश को केवल राजनैतिक दृष्टि से ही नहीं सभी दृष्टियों से जागृत होते हुए देखना चाहते थे। विनय सिंह की माता जाह्नवी के द्वारा उन्होनें इस बात पर प्रकाश डाला कि भारत को कैसी माताएं चाहिए जो अपने पुत्रों को सही मार्ग दिखा सके।

'रंगभूमि' की कथानक की आधारशिला भले ही पांडेपुर में रखी गई है किन्तु कथा के तीन केंद्र बन गए हैं – पहला केंद्र पांडेपुर है, जहाँ का नायक सूरदास है। दूसरा केंद्र काशी है जहाँ जॉन सेवक, सोफिया, विनय, राजा महेंद्र कुमार, इंदु आदि के माध्यम से घटनाक्रम आगे बढ़ता दिखाई पड़ता है और तीसरा केंद्र उदयपुर की रियासत है इस रियासत से संबंधित घटनाएं जसवंत नगर और उसके समीपवर्ती क्षेत्रों में पल्लवित होती दिखाई पढ़ती है। तीन केंद्रों को एक ही कथानक के नीचे लेकर आगे बढ़ना आसान नहीं है लेकिन यह प्रेमचंद की विशेषता रही कि सभी कथाएं साथ-साथ आगे बढ़ती हुई दिखाई पड़ती है। 'रंगभूमि' की कथा का विषय उस समय का सम्पूर्ण भारतीय समाज है। जीवन के अधिक से अधिक जीतने रूपों को चित्रित करना संभव हो सकता था, कथाकार ने उन सभी को अभिव्यक्त करने का पूर्ण प्रयत्न किया है – 'इसमें विश्व के तीन बड़े धर्म (हिन्दू, मुसलमान एवं ईसाई), तीन वर्ग (पूंजीपति वर्ग, मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग) तथा मानवीय जीवन की तीन अवस्थाओं में चित्रित पात्र (वृद्ध-ईश्वर सेवक, युवक-विनय, शिशु-ईसू) उपलब्ध होते है'।

बोधक प्रश्न

1. 'रंगभूमि' उपन्यास में कितनी समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है?
2. 'रंगभूमि' उपन्यास का कथानक पांडेपुर के अलावा और कहाँ-कहाँ तक फैला हुआ है?
3. 'रंगभूमि' उपन्यास में जीवन की कितनी अवस्थाओं को देखा जा सकता है?

1.6.2 'रंगभूमि': कथानक के दोष-------प्रेमचंद के 'रंगभूमि' उपन्यास की देशकाल एवं वातावरण के चित्रण की दृष्टि से अपनी एक महत्वपूर्ण विशिष्टता है। इसमें लेखक ने कथानक के अनुसार वातावरण का सृजन किया है। फिर भी वस्तु-शिल्प की दृष्टि से 'रंगभूमि' की कथानक में कुछ दोष आ ही गए हैं---- पहला दोष यह है कि-----उक्त उपन्यास में

कथाकार बीच-बीच में आकर टीका-टिप्पणी करने लगते हैं जिससे कहीं-कहीं पर कथानक की विकास गति प्रभावित हुई है। उदाहरणार्थ- जब सोफिया अपनी माँ से झगड़कर घर से निकल पड़ती है। तो उसके बचपन की याद जाग उठती है और उसे अपनी सहेली इंदु का स्मरण हो आता है। यहीं लेखक अपनी टिप्पणी भी देने लगते हैं, 'मजबूरी में हमें उन लोगों की याद आती है, जिनकी सूरत भी विस्मृत हो चुकी होती है'...।

दूसरा दोष यह है कि------ कथानक में कुछ घटनाओं का आकस्मिक, अस्वाभाविक एवं अप्रासंगिक रूप से समावेश। इस दृष्टि से सोफिया का जलते हुए भवन को देखकर आग में कूद जाना, जल जाना, और इंदु का विनय के सम्मुख पहुँच जाना आदि। कभी-कभी तो ऐसा भी लगने लगता है कि विनय और सोफिया ही कथा के प्रमुख पात्र हैं। इनका पारस्परिक संबंध उतने घनिष्ठ रूप में स्थापित नहीं हो पाया है, जिस रूप में होना चाहिए था। 'प्रेमाश्रम', 'निर्मला' आदि उपन्यासों में जिस प्रकार से विभिन्न प्रेम संबंधों की कसावट देखी गई है उसकी कमी तो 'रंगभूमि' उपन्यास में अवश्य ही खली है।

तीसरा दोष यह है कि------- तत्कालीन समाज में व्याप्त कारुणिक दशा को चित्रित करने के लिए प्रेमचंद ने आवश्यकता से अधिक कारुणिक चित्रों को दर्शाया है जिनकी आवश्यकता नहीं थी। जैसे---- इंद्रदत्त की मृत्यु गोली लगने से होती है, विनय आत्महत्या करते हैं, सोफिया गंगा में डूबकर गंगा प्राणांत करती है, सूरदास अस्पताल में मर जाते हैं और राजा महेंद्र कुमार सिंह सूरदास की प्रस्तर प्रतिमा के नीचे दबकर जन से हाथ धो बैठते हैं। 'रंगभूमि' के अंतिम पर्व में एक के बाद एक दुखद प्राणान्तों को दिखाया तो गया है लेकिन उससे उपन्यास प्रभावशाली बनने के बजाय बोझिल बन गया है।

'रंगभूमि' कथानक में भले ही कुछ दोष हो लेकिन हम फिर भी इस बात को नकार नहीं सकते हैं कि उपन्यासकार ने उक्त उपन्यास के द्वारा भारत समाज की संपूर्णता को गाथाबद्ध करने का प्रयास किया है। हिन्दी साहित्य में इतनी बड़ी 'रंगभूमि' को लेकर, 'रंगभूमि' लिखने का साहस पर ने ही किया था। इसलिए इन कुछ दोषों को अनदेखा किया ही जा सकता है।

बोधक प्रश्न ---

1. 'रंगभूमि' उपन्यास का पहला दोष क्या है?
2. 'रंगभूमि' के अंतिम पृष्ठों में एक के बाद एक कितनी मृत्यु को दिखाया गया है?

1.7 'रंगभूमि' कथानक का मूल उद्येश्य ----- उपन्यासकार प्रेमचंद के शब्दों में, 'साहित्यकार का काम केवल पाठकों का माँ बहलाना नहीं है, यह तो भाटों और मदारियों, विदूषकों और मसखरों का काम है। साहित्यकार का पद इससे कहीं

ऊँचा है। वह दूसरा पथ-प्रदर्शक होता है, वह हमारे मनुष्यत्व को जागता है – हममें सदभावों का संचार करता है, हमारी दृष्टि को फैलाता है – कम से कम उसका यही उद्देश्य होने चाहिए'। प्रेमचंद की उपर्युक्त मान्यता उनके साहित्यिक स्वरूप को प्रकट करती है। उन्होंने ही सर्वप्रथम हिन्दी-उपन्यास में उद्देश्य-पक्ष की महत्ता स्थापित करते हुए उसके विकास की दिशा मोड़ी। मानव-जीवन से असंबद्ध हिन्दी का उपन्यास-साहित्य प्रेमचंद का सक्रिय दिशा-निर्देश पाकर जीवन की वास्तविकता की ठोस चट्टान पर आ खड़ा हुआ। मानव-जीवन की वास्तविकता 'रंगभूमि' की चित्रपटी है- संसार के मंच पर अभिनय करनेवाले मनुष्यों की रंगस्थली, सूरदास उसका नायक है। वह अंधा-अपाहिज है तो क्या हुआ, दुनिया में आया है तो अभिनय उसे भी करना ही पड़ेगा। संसार किसी को नहीं छोड़ता। यह 'रंगभूमि' के उद्येश्य का एक पक्ष है। सूरदास को सच्चाई तथा ईमानदारी के साथ उपन्यासकार ने जीवन का खेल मन लगाकर खिलाया है और उसने इस खेल म प्राणों की बाजी भी लगवा दी है--- बात हार या जीत की हमेशा नहीं होती पर जो हमारे हिस्से का खेल है उसे मन लगाकर खेलना जरूरी है यह पाठकों को समझना लेखक का दूसरा प्रमुख उद्येश्य रहा। पाश्चात्य तथा पूर्वी सभ्यता का तुलनात्मक विवेचन भी 'रंगभूमि' में प्रस्तुत है। जिसके द्वारा प्रेमचंद ने भारतीय समाज के सम्मुख यह सांस्कृतिक प्रश्न भी उठाया है कि हमारी अंधानुकरण की प्रवृत्ति कहाँ तक उचित है? हम जो दूसरों का अनुकरण करते हुए अपने ही लोगों से दूर चले जाते हैं यह कितना उचित है? चाहे पांडेपुर के किसान-मजदूर हो या फिर उदयपुर के राजघराने के लोग अगर हम भारतीय एक-दूसरे से कटकर रहेंगे तो भला किसी का नहीं होगा। कुटिल क्लार्क, जॉन सेवक जैसे विदेशी हमें कहीं का नहीं छोड़ेंगे और हमारी संस्कृति को नष्ट कर देंगे। प्रेमचंद ने भारतीय समाज को, जो सदियों से अंधविश्वासी और रूढ़िग्रस्त होने के कारण मूक था। 'रंगभूमि' के द्वारा उसे वाचाल बना दिया। इसी संबंध में डॉ. इंद्रनाथ मदान का कहना था, 'प्रेमचंद' की कला का मूल उद्देश्य न तो चरित्र चित्रण है और न वस्तु-संगठन, वरन सुधार है। साहित्य के कार्य है – एक जीवन की व्याख्या करना और दूसरा जीवन को परिवर्तित करना। प्रेमचंद पिछले पर अधिक जोर देते है'।

बोधक प्रश्न ------

1. 'रंगभूमि' उपन्यास में प्रेमचंद ने किन दो संस्कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन किया है?
2. प्रेमचंद ने 'रंगभूमि' के माध्यम से भारतीय समाज के सामने कौनसा प्रश्न रखा है?

1.8 पाठ सार ---- प्रस्तुत इकाई का अध्ययन हमने इस बिन्दु से शुरू किया था कि क्यों प्रेमचंद को 'उपन्यास सम्राट' कहा जाना गलत नहीं होगा। अति संक्षेप में हमने यह देखा कि प्रेमचंद जी का जन्म सन् 1880 में बनारस के लमही नामक गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम अजायब राय और माता का नाम आनंदी देवी था। प्रेमचंद जब 8 वर्ष के थे तभी उनकी माता का का देहांत हो गया। घर में विमाता का प्रवेश हुआ। विमाता उन पर अत्याचार किया करती थी। बालक अपने जीवन के दुखों को भूलने के लिए बहुत छोटी उम्र में ही साहित्य रचना करने लगे थे। प्रेमचंद के बचपन का नाम धनपतराय था, किन्तु उनके चाचा नवाबराय बुलाते थे। प्रेमचंद का विवाह 15 साल की अवस्था में ही हो गया था। लेकिन उनका दाम्पत्य जीवन सुखी नहीं हो सका। प्रेमचंद जी ने पहले अध्यापक के रूप में काम करना शुरू किया फिर सब-डिप्टी-इंस्पेक्टर के रूप में भी काम किया। गांधी जी के विचारों से प्रभावित होकर उन्होनें सरकारी नौकरी से त्याग पत्र दे दिया। इसके बाद से उन्होंने साहित्य साधना को ही अपने जीवन का प्रमुख लक्ष्य बना लिया। प्रेमचंद ने सबसे पहले उर्दू में साहित्य रचना का काम शुरू किया था। सन् 1901-1915 तक का समय प्रेमचंद की उर्दू रचनाओं के लिए बहुत महत्वपूर्ण रहा। सन् 1901 में उन्होंने उर्दू में 'प्रेमा' नामक उपन्यास को लिखा। सन् 1904 से उन्होनें कहानी रचना का कार्य भी प्रारंभ कर दिया। इसके बाद उन्होंने 4-5 कहानियों की एक और संग्रह प्रकाशित की। जिसका नाम था 'सोजे वतन'। इस संग्रह में राष्ट्रीयता की भावना मुखर थी, इसलिए इस संग्रह की समस्त रचनाएं सरकार ने ज़ब्त करवा ली और उन्हें जला डाला। सन् 1907 में उनकी प्रथम कहानी 'संसार का अनमोल रत्न' उर्दू के प्रसिद्ध पत्र 'जमाना' में प्रकाशित हुई। प्रेमचंद उर्दू में नवाबराय के नाम से लिखा करते थे। हिन्दी में प्रेमचंद नाम से ही लिखा करते थे। हिन्दी में उनका पहला कहानी संग्रह 'सप्त सरोज' के नाम से प्रकाशित हुआ। आपने यह भी पढ़ा कि प्रेमचंद जी केवल साहित्यकार ही नहीं थे बल्कि बहुत अच्छे संपादक भी थे। मर्यादा, माधुरी, हंस, जागरण नामक पत्रिकाओं का सफल सम्पादन किया था। 'हंस' के कारण से उन्हें हिन्दी सिनेमा जगत में प्रवेश करने का अवसर भी प्राप्त हुआ, लेकिन फिल्म जगत में उन्हें सफलता प्राप्त नहीं हुई। सन् 1936 में उनकी मृत्यु हुई।

जयशंकर प्रसाद और प्रेमचंद की लेखन और चिंतन शैली में क्या अंतर है। हमने यह देखा भले ही हिन्दी के लिए उपन्यास शब्द नया नहीं है लेकिन यह भी सही है कि सबसे पहले बांग्ला और मराठी उपन्यासों का अनुवाद हिन्दी में किया गया। हिन्दी उपन्यासों पर अंग्रेजी के नॉवेल यानि फिक्शन के प्रभाव को भी देखा जा सकता है जबकि ऋग्वेद की प्राचीन कथाओं को उपन्यास से कम समझना गलत ही होगा। हिन्दी के सर्वप्रथम मौलिक उपन्यासकार होने का श्रेय लाला श्रीनिवास दास को जाता है। 'परीक्षा गुरु' 1882 को हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास माना गया। इस समय काल को हिन्दी उपन्यास का प्रथम चरण माना गया। प्रथम चरण के समस्त उपन्यास साहित्य को दो

वर्गों में विभक्त किया जा सकता है – पहला---आचार, धर्म, नीति, समाज-सुधार आदि की भावना से प्रेरित सामाजिक एवं ऐतिहासिक उपन्यास, जिनमें उपदेश का स्वर अधिक रहा और दूसरा---शुद्ध मनोरंजन के लिए लिखे गए तिलस्मी और ऐयारी के उपन्यास। 'चंद्रकांता' का नाम दूसरी प्रकार के उपन्यासों में प्रमुख रूप से लिया जाता है। हिन्दी उपन्यास साहित्य के विकास में द्वितीय चरण का आरंभ उपन्यास-क्षेत्र में प्रेमचंद के आगमन से ही स्वीकार किया जाता है। प्रेमचंद ने एक नई राष्ट्रीय चेतना लेकर उपन्यास लिखना प्रारंभ किया था। तीसरे चरण के उपन्यासों में प्रगतिवादी विचारधारा को अधिक महत्व मिला। आप विद्यार्थियों ने अध्ययन करते समय अवश्य ही यह समझा होगा कि हिन्दी के समस्त उपन्यासों को देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि कथावस्तु की दृष्टि से इनके तीन वर्ग हैं----- 1. सामाजिक, 2. ऐतिहासिक, 3. पौराणिक।

आपने यह भी पढ़ा कि मुंशी प्रेमचंद उपन्यास को मानव जीव का इतिहास मानते थे। उपन्यास कथा-साहित्य का का चरम विकास है। 'जो हो चुका हो', उसे उलट-पुलटकर और कल्पना का रंग देकर उपन्यासकार 'जो हो सकता है' की संभावना व्यक्त करता है। इस प्रक्रिया को पूरी करने के लिए उपन्यासकार किन 6 तत्वों का सहारा लेता है इसकी जानकारी भी आपने विस्तार से प्राप्त की। आपने पढ़ा---- कथानक शब्द का अंग्रेजी रूपांतरण होगा-'PLOT'। उपन्यास का कथानक ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक आदि कुछ भी हो सकता है। उपन्यास में केवल एक ही कथानक मुख्य आवेश होता है लेकिन उस मुख्य कथानक को आगे बढ़ाने के लिए अर्थात, गति प्रदान करने के लिए अनेक सहायक कथाओं का सहारा लिया जाता है। इस प्रकार की कथाओं को 'सहायक कथानक' कहा जाता है। उपन्यास के कथानक में गतिशीलता होने के साथ ही साथ उत्सुकता का होना भी बहुत आवश्यक है। कहानी की तुलना में उपन्यास में पात्रों की संख्या अधिकतर अधिक ही देखी जाती है। लेकिन आजकल कुछ आधुनिक उपन्यासकार कम पात्रों को लेकर भी उपन्यास रचना का काम कर रहे हैं। उपन्यासों के संवाद संक्षिप्त, सरल और स्वाभाविक होने चाहिए। लंबे संवाद अस्वाभाविक प्रतीत होने लगते हैं। उपन्यासकार किसी भी घटना अथवा गतिविधि का स्वयं वर्णन कर सकता है इसके लिए पात्रों के संवाद योजना की आवश्यकता नहीं पड़ती। उपन्यास की भाषा उसके प्रकार पर निर्भर करती है। अर्थात, जिस पृष्ठभूमि को लेकर उपन्यास लिखा जाता है भाषा शैली भी उसी प्रकार की होती है। प्राचीन उपन्यासकार भाषा की शुद्धता पर अधिक ध्यान देते थे, आजकल के अधिकांश उपन्यासकार सरल भाषा में लिखा करते हैं। उपन्यास की भाषा शैली कहानी के समान अनेक प्रकार की हो सकती है। उपन्यासकार के पास स्थान और समय की न्यूनता नहीं होती। वह विस्तार से देश और काल का परिचय दे सकता है। वातावरण की सफलता इसी में है कि उपन्यास पढ़नेवाला स्वयं को उसी वातावरण से घिरा समझने लगे, जिसका निर्माण उपन्यासकार ने किया है। वातावरण सामाजिक, पारिवारिक, ग्रामीण, राजनीतिक आदि किसी भी प्रकार का हो

सकता है। उपन्यास की रचना में लेखक का कोई न कोई उद्देश्य छिपा रहता है। पहले आदर्शवादी उपन्यास ही अधिक लिखे जाते थे। आजकल के अधिकतर उपन्यास यथार्थवादी हुआ करते हैं। कुछ उपन्यासकार ऐतिहासिक परिवेश में वर्तमान काल की समस्याओं का समावेश कर देते हैं। कहानी के समान ही उपन्यास का शीर्षक भी महत्वपूर्ण होता है। जिस प्रकार शीश से मनुष्य पहचाना जाता है, उसी प्रकार शीर्षक उपन्यास की पूर्ण पहचान बनाता है।

उपन्यासकार के रूप में प्रेमचंद का हिन्दी साहित्य में क्या स्थान था इस विषय पर गहन अध्ययन करते हुए आपने पढ़ा कि---- प्रेमचंद साहित्य को जीवन की व्याख्या एवं आलोचना स्वीकार करते थे तथा उपन्यासों को मानव जीवन का महाकाव्य समझते थे। प्रेमचंद के उपन्यासों की मूल प्रेरणा सामाजिक कल्याण की भावना है। उनके कथानकों में मानव के समसामयिक जीवन का चित्रण मिलता है। व्यक्ति ही समाज का रूप धरण कर लेता है, अतः सामाजिक समस्याएं अंततः व्यक्ति की अपनी ही समस्याएं बन जाती है। यही कारण है कि सामाजिक जीवन से निकटतः संबंध होने पर भी प्रेमचंद के कथानक व्यक्ति की अवहेलना नहीं करते। प्रेमचंद ने अपने युग की समस्याओं को भलीभाँति समझा था। उनका युग पुनरुत्थानवादी था। देश में ऐसी संस्कृति का विकास हो रहा था, जिसकी चकाचौंध से प्रभावित होकर समूची पीढ़ी भी चली जा रही थी। देश में पूंजीवाद का बोलबाला हो गया था और वर्ग- वैषम्य जीवन के प्रत्येक स्तर पर परिलक्षित होता था। प्रेमचंद एक जागरूक कलाकार थे। उन्होंने इन सभी समस्याओं का गहन अध्ययन किया और अपने उपन्यासों में उनको स्थान प्रदान किया है। प्रेमचंद का कहना था कि जिस साहित्य से हमारी सुरुचि न जागे, आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति न मिले, हमारा सौन्दर्य प्रेम न जाग्रत हो, जो हमें सच्चा संकल्प और कठिनाईयों पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता न प्रदान करें, वह हमारे लिए बेकार है, वह साहित्य कहलाने का अधिकारी नहीं है। उनकी स्पष्ट घोषणा थी, 'मुझे यह कहने में हिचक नहीं की मैं और चीजों की तरह कला को उपयोगिता की तुला पर तोलता हूँ। कलाकार अपनी कला में सौन्दर्य की सृष्टि करके परिस्थिति को विकास के लिए उपयोगी बनाता है'। 'सेवासदन' की नायिका सुमन के माध्यम से प्रेमचंद ने इस सच्चाई को प्रस्तुत किया है। हमारे समाज के मठाधीश, समाजसुधारक, धनपति आदि करने को तो बड़ी-बड़ी बातें करते हैं लेकिन किसी भी समस्या का व्यावहारिक समाधान वे कभी नहीं निकालते। इस पर प्रेमचंद ने तीव्र व्यंग्य किया है। 'प्रेमाश्रम' में प्रेमशंकर के माध्यम से जमींदारी उन्मूलन, भूमिधरी, सहकारिता आदि की कल्पना की गई है। इस उपन्यास में सामंती व्यवस्था का खोखलापन प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास का मूल सार ही है, 'भूमि उसकी है, जो उसे जोते'। 'निर्मला' प्रेमचंद के द्वारा लिखित सामाजिक यथार्थ पर आधारित उपन्यास है। इसमें उन्होनें दहेज प्रथा, अनमेल विवाह जैसी कुत्सित प्रवृत्तियों पर व्यंग्य किया है। 'कर्मभूमि' में यों तो अनेक समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है लेकिन प्रस्तुत उपन्यास का मुख्य उद्देश्य है- स्वदेशानुराग उत्पन्न करना। 'गोदान' तक आते-आते उनका

लेखन कौशल और अधिक प्रौढ़ हो गया था। उनका 'गोदान' भारत के समाज का यथार्थ और सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत करनेवाला महाकाव्य है। 'गोदान' दुखी एवं शोषित मानवात्मा का करुण क्रंदन है। पत्रकारों की स्वार्थलिप्सा, सामंतशाही एवं धर्म का खोखलापन, शोषण, संयुक्त परिवार व्यवस्था, वर्णव्यवस्था की विश्रृंखलता आदि विभिन्न समस्याएं इसमें अत्यंत विस्तृत पृष्ठभूमि में चित्रित की गई है। प्रेमचंद को मानव जीवन का पर्याप्त अनुभ था। वे पुस्तकों की पाठशाला से न आकर जीवन की पाठशाला से साहित्य के क्षेत्र में आए थे। उन्होनें अपने युग को समझ था और परिवर्तनशीलता को आत्मसात किया था। साहित्यकार के रूप में उन्होनें कभी अपने दायित्व की अवहेलना नहीं की थी। यही प्रेमचंद की हठता थी और इसी कारण से उनका साहित्य विराट बन सका था। उपन्यासकार के रूप में प्रेमचंद ने हिंदी भाषा के परिनिष्ठित रूप को अपनाने के साथ ही साथ अशिक्षित पात्रों की भाषा में जहाँ स्थानीय तथा तद्भव शब्दों का प्रयोग किया है। अंतर्द्वंद्व के चित्रण में प्रेमचंद की भाषा को विशेष सफलता मिली है।

विद्यार्थियो! इन सब जानकारियों के साथ ही साथ आपने प्रेमचंद द्वारा लिखित 'रंगभूमि' उपन्यास की कथानक का अध्ययन भी किया। आपने देखा काशी की बाहरी भाग में बसे पांडेपुर गाँव को 'रंगभूमि' का कथास्थल बनाया गया है। किन्तु, कथा के तीन केंद्र बन गए हैं – पहला केंद्र पांडेपुर है, जहाँ का नायक सूरदास है। दूसरा केंद्र काशी है जहाँ जॉन सेवक, सोफिया, विनय, राजा महेंद्र कुमार, इंदु आदि के माध्यम से घटनाक्रम आगे बढ़ता दिखाई पड़ता है और तीसरा केंद्र उदयपुर की रियासत है इस रियासत से संबंधित घटनाएं जसवंत नगर और उसके समीपवर्ती क्षेत्रों में पल्लवित होती दिखाई पढ़ती है। तीन केंद्रों को एक ही कथानक के नीचे लेकर आगे बढ़ना आसान नहीं है लेकिन यह प्रेमचंद की विशेषता रही कि सभी कथाएं साथ-साथ आगे बढ़ती हुई दिखाई पड़ती है। 'रंगभूमि' की कथा का विषय उस समय का सम्पूर्ण भारतीय समाज है। जीवन के अधिक से अधिक जीतने रूपों को चित्रित करना संभव हो सकता था, कथाकार ने उन सभी को अभिव्यक्त करने का पूर्ण प्रयत्न किया है – 'इसमें विश्व के तीन बड़े धर्म (हिन्दू, मुसलमान एवं ईसाई), तीन वर्ग (पूंजीपति वर्ग, मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग) तथा मानवीय जीवन की तीन अवस्थाओं में चित्रित पात्र (वृद्ध-ईश्वर सेवक, युवक-विनय, शिशु-ईसू) उपलब्ध होते है'। ग्वाले, मजदुर, गाड़ीवान और खोमचेवालों की इस गरीब बस्ती में एक गरीब और अंधा चमार रहता है जिसका नाम है – सूरदास। वह है तो भिखारी लेकिन उसके पास पुरखों की रखी हुई दस बीघा जमीन भी है। इसी दस बीघा जमीन के लिए जॉन सेवक का दिन प्रतिदिन बढ़ते रहनेवाला लालच उपन्यास को विकास गति प्रदान करता है और साथ ही साथ कारुणिक दृश्य भी। जमीन का यह लालच केवल छोटा सा लालच नहीं है बल्कि यह पूंजीवाद और औद्योगीकरण की विभीषिका को दर्शानेवाला है। प्रस्तुत उपन्यास में वैसे तो सौ से अधिक पात्र है लेकिन लेखक ने 45 पात्रों को नाम दिया है बाकी को बेनाम ही छोड़ दिया है। आप सबने यह

तो भलीभाँति समझ ही लिया है कि प्रेमचंद ने कभी केवल मनोरंजन के लिए साहित्य रचना का काम नहीं किया था। 'रंगभूमि' की कथा को प्रेमचंद ने परिवार विशेष की कहानी कहते हुए तथा प्रमुख पात्रों का परिचय देना शुरू किया है। धीरे-धीरे कथा के भावी विकास के लिए सामग्री अर्थात विषय मिलने लगी और उपन्यास का विकास द्रुत गति से होने लगा। प्रेमचंद ने संकेत, भविष्यवाणी, समस्याओं के निराकरण आदि जैसी तरह-तरह की विधियों को अपनाकर 'रंगभूमि' के कथानक को विकसित करने का प्रयास किया है। जैसे सूरदास का ताहिरअली के सामने यह संकल्प करना कि, 'मेरे जीते-जी तो जमीन न मिलेगी, हाँ मर जाऊँ तो भले ही मिल जाए'। पाठक को यह संकेत तो मिल जाता है कि जमीन के लिए संघर्ष अवश्य होगा। यह संकेत पाठक को आगे बढ़ने का रोमांच भी प्रदान करता है। 'रंगभूमि' के कथानक में पेचीदगियों, उलझनों तथा बाधाओं की भरमार है, किन्तु कथावस्तु का प्रवाह कहीं रुका नहीं है 'रंगभूमि' उपन्यास का भी अपना अलग महत्व और उद्देश्य है। मानव जीवन की वास्तविकता 'रंगभूमि' की चित्रपटी में उभर आया है। संसार के मंच पर अभिनय करनेवाले मनुष्यों में से एक सूरदास भी है। संसार किसी को नहीं छोड़ता इसी कारण से सूरदास के हिस्से का संघर्ष उसे लगातार करना पड़ा। सूरदास के माध्यम से लेखक ने यह समझाया कि मानव-जीवन की वास्तविकता 'रंगभूमि' की चित्रपटी है- संसार के मंच पर अभिनय करनेवाले मनुष्यों की रंगस्थली, सूरदास उसका नायक है। वह अंधा-अपाहिज है तो क्या हुआ, दुनिया में आया है तो अभिनय उसे भी करना ही पड़ेगा। अपने हिस्से का खेल अर्थात कर्तव्य पूरी ईमानदारी से निभाना ही मनुष्य का सबसे पहला धर्म है। पाश्चात्य तथा पूर्वी सभ्यता का तुलनात्मक विवेचन भी 'रंगभूमि' में प्रस्तुत है। जिसके द्वारा प्रेमचंद ने भारतीय समाज के सम्मुख यह सांस्कृतिक प्रश्न भी उठाया है कि हमारी अंधानुकरण की प्रवृत्ति कहाँ तक उचित है? हम जो दूसरों का अनुकरण करते हुए अपने ही लोगों से दूर चले जाते हैं यह कितना उचित है? चाहे पांडेपुर के किसान-मजदूर हो या फिर उदयपुर के राजघराने के लोग अगर हम भारतीय एक-दूसरे से कटकर रहेंगे तो भला किसी का नहीं होगा। कुटिल क्लार्क, जॉन सेवक जैसे विदेशी हमें कहीं का नहीं छोड़ेंगे और हमारी संस्कृति को नष्ट कर देंगे। 'रंगभूमि' उपन्यास को भले ही सन् 1924-25 के दौरान लिखा गया लेकिन इन सब उद्देश्यों को देखकर यह कह सकते है कि आज भी 'रंगभूमि' उपन्यास की प्रासंगिकता कम नहीं हुई है क्यों की आज भी भारतीयों में अंधानुकरण की प्रवृत्ति है और औद्योगीकरण की समस्या आज भी व्याप्त है। आप विद्यार्थियों ने यह भी देखा कि उक्त उपन्यास में कथाकार बीच-बीच में आकर टीका-टिप्पणी करने लगते हैं जिससे कहीं-कहीं पर कथानक की विकास गति प्रभावित हुई है। उदाहरणार्थ- जब सोफिया अपनी माँ से झगड़कर घर से निकल पड़ती है। तो उसके बचपन की याद जाग उठती है और उसे अपनी सहेली इंदु का स्मरण हो आता है। यहीं लेखक अपनी टिप्पणी भी देने लगते हैं, 'मजबूरी में हमें उन लोगों की याद आती है, जिनकी सूरत भी विस्मृत हो चुकी होती है'...। कथानक में कुछ घटनाओं का आकस्मिक, अस्वाभाविक एवं

अप्रासंगिक रूप से समावेश। इस दृष्टि से सोफिया का जलते हुए भवन को देखकर आग में कूद जाना, जल जाना, और इंदु का विनय के सम्मुख पहुँच जाना आदि। कभी-कभी तो ऐसा भी लगने लगता है कि विनय और सोफिया ही कथा के प्रमुख पात्र हैं। इनका पारस्परिक संबंध उतने घनिष्ठ रूप में स्थापित नहीं हो पाया है, जिस रूप में होना चाहिए था। 'प्रेमाश्रम', 'निर्मला' आदि उपन्यासों में जिस प्रकार से विभिन्न प्रेम संबंधों की कसावट देखी गई है उसकी कमी तो 'रंगभूमि' उपन्यास में अवश्य ही खली है। तत्कालीन समाज में व्याप्त कारुणिक दशा को चित्रित करने के लिए प्रेमचंद ने आवश्यकता से अधिक कारुणिक चित्रों को दर्शाया है जिनकी आवश्यकता नहीं थी। जैसे---- इंद्रदत्त की मृत्यु गोली लगने से होती है, विनय आत्महत्या करते हैं, सोफिया गंगा में डूबकर प्राणांत करती है, सूरदास अस्पताल में मर जाते हैं और राजा महेंद्र कुमार सिंह सूरदास की प्रस्तर प्रतिमा के नीचे दबकर जन से हाथ धो बैठते हैं। 'रंगभूमि' के अंतिम पर्व में एक के बाद एक दुखद प्राणान्तों को दिखाया तो गया है लेकिन उससे उपन्यास प्रभावशाली बनने के बजाय बोझिल बन गया है। लेकिन 'रंगभूमि' कथानक में भले ही कुछ दोष हो लेकिन हम फिर भी इस बात को नकार नहीं सकते हैं कि उपन्यासकार ने उक्त उपन्यास के द्वारा भारत समाज की संपूर्णता को गाथाबद्ध करने का प्रयास किया है। हिन्दी साहित्य में इतनी बड़ी 'रंगभूमि' को लेकर, 'रंगभूमि' लिखने का साहस पर ने ही किया था। इसलिए इन कुछ दोषों को अनदेखा किया ही जा सकता है।

1.9 पाठ की उपलब्धियाँ---- प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद अब आप –

2. उपन्यासकार की रूप में प्रेमचंद को पहचान गए हैं।
3. 'रंगभूमि': कथानक को आप जान चूकें है।
4. 'रंगभूमि' उपन्यास की विकास यात्रा को आप जान गए हैं।
5. 'रंगभूमि' उपन्यास के उद्देश्य तथा दोषों से भी आप परिचित हो गए हैं।

1.10 परीक्षार्थ प्रश्न

(अ)

लघु प्रश्न उत्तर (200 शब्द)

1. 'रंगभूमि' कथानक के उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।
2. 'रंगभूमि' कथानक में कुछ दोष भी है उनपर प्रकाश डालिए।
3. 'रंगभूमि' उपन्यास की कथानक के विकासक्रम पर प्रकाश डालिए।

(ब)

दीर्घ प्रश्न उत्तर (500 शदब)

1. 'रंगभूमि' उपन्यास की कथानक पर प्रकाश डालिए।
2. हिन्दी उपन्यास की विकास यात्रा पर प्रकाश डालिए।

(स)

1. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।
   (अ) कथावस्तु की दृष्टि से हिन्दी उपन्यास के ________ वर्ग है।
   (आ) 'सेवासदन' का उर्दू नाम ___________ है।
   (इ) 'बाज़ार-हुस्न' का प्रकाशन लाहौर से सन् ________ में हुआ।
2. सही विकल्प चुनें।
   (अ) 'रंगभूमि' की रचना तिथि कौन सी है?
   1. 1924-25 2.1857-58 3. 1942-43 4.1944-45
   (आ) 'रंगभूमि' उपन्यास में कितने पात्र है?
   1. 99 2. 100 3. 144 4. 101
   (इ) राजा महेंद्र कुमार की परिवार में कितने सदस्य है?
   1. 16 2. 33 3. 9 4. 4
   (ई) 'रंगभूमि उपन्यास का नायक कौन है?
   1. सूरदास 2. लक्ष्मीदास 3. मानिकदास 4. गुरुदास

3 सुमेल कीजिए।

1	सूरदास	---	प्रेमचंद
2	जॉन सेवक	---	दस बीघा
3	विनय	---	नायक

4 निर्मला --- सोफिया

1.11 पठनीय पुस्तकें

1. ‘रंगभूमि’ – उपन्यास लेखक प्रेमचंद

2. मुंशी प्रेमचंद एवं उनका उपन्यास ‘रंगभूमि’ (समीक्षा एवं व्याख्या) लेखक ------- डॉ. जगदीश शर्मा

इकाई 12 : 'रंगभूमि' : एक सामाजिक उपन्यास

रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 मूल पाठ : 'रंगभूमि' : एक सामाजिक उपन्यास
12.3.1 उपन्यास की परिभाषा और विकास यात्रा
12.3.2 उपन्यास के तत्व
12.3.3 उपन्यासों का विभाजन
12.3.4 प्रेमचंद व्यक्तित्व और कृतित्व
12.3.4.1 प्रेमचंद उपन्यासकार के रूप में
12.3.4.2 'रंगभूमि' : कथानक
12.3.5 'रंगभूमि' : एक ऐतिहासिक उपन्यास
12.4 पाठ सार
12.5 पाठ की उपलब्धियाँ
12.6 शब्द संपदा
12.7 परीक्षार्थ प्रश्न
12.8 पठनीय पुस्तकें

12.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई 'रंगभूमि : एक सामाजिक कथानक' को आपके पाठ्यक्रम में आपके अध्ययन हेतु रखा गया है ताकि उपन्यास सम्राट प्रेमचंद द्वारा लिखित इस महत्वपूर्ण उपन्यास की विस्तृत जानकारी आप सब प्राप्त कर सके। प्रेमचंद की औपन्यासिक कला को उनकी युगीन पृष्ठभूमि में ही भलीभाँति समझा जा सकता है। युगीन परिवेश में ही उनके उपन्यास शिल्प का उदय और विकास हुआ है। अपने पूर्ववर्ती उपन्यासकारों से निःसंदेह उन्हें उपन्यास रचना की प्रेरणा मिली, किंतु युग-जीवन के परिवेश में उन्होंने उपन्यास-शिल्प को जो अभिनव स्वरूप प्रदान किया, उससे वे असंदिग्ध रूप से युग-प्रवर्तक बन गए। अतः नाट्य-कला के क्षेत्र में जिस प्रकार जयशंकर प्रसाद ने एक अभिनव दिशा एवं दृष्टि का पथ प्रशस्त किया, उसी प्रकार प्रेमचंद जी ने भी कथा-साहित्य को अभिनव प्राणों से स्पंदित किया। और उपन्यास के क्षेत्र में भी उन्होंने युग-स्थापना का कार्य किया।

12.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से आप-

- संक्षेप में उपन्यास की परिभाषा और उसकी विकास यात्रा का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

- मूल पाठ में आप रंगभूमि : कथानक की जानकारी विस्तार से प्राप्त करेंगे।
- रंगभूमि उपन्यास की अंतर्कथाओं का भी आप ज्ञान प्राप्त करेंगे।

12.3 मूल पाठ : 'रंगभूमि' : एक सामाजिक उपन्यास

12.3.1 उपन्यास की परिभाषा और विकास यात्रा

हिंदी के लिए उपन्यास शब्द नया नहीं है। यद्यपि उसका जो समकालीन रूप है व एकदम नया है। और अंग्रेजी के माध्यम से हिंदी में आया है। संस्कृत में उपन्यास शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग भरतमुनि ने नाट्य शस्त्र में नाट्य विश्लेषण के संदर्भ में 'पताका' स्थानक के चतुर्थ भेद और प्रतिमुख संधि के अंग विशेष के रूप में किया है। हिंदी का उपन्यास विराट कथा रूप है जो भारत की विपुल कथा परंपरा से नहीं जुड़ता। हिंदी में उपन्यास शब्द अंग्रेजी के नॉवेल का पर्यायवाची है। 'नॉवेल' का अर्थ है - 'नया'। इसे 'फिक्शन' भी कहा जाता है। 'फिक्शन' का अर्थ गल्प होता है जो जीवन के रंगीनियों से युक्त यथार्थ से संबद्ध होता है।

क्लारा रीव ने उपन्यास के बारे में कहा है, 'उपन्यास अपने युग का चित्रण करता है। रोमांस उदात्त भाषा में उसका वर्णन करता है, जो न घटित है और न घटायमान। उपन्यास दैनिक जीवन में घटित होनेवाली घटनाओं का वर्णन करता है जिनका हमारे और हमारे मित्रों के जीवन में घटित होना संभव हो।'

क्रोसे के अनुसार, 'उपन्यास से अभिप्राय उस गद्यमय गल्प-कथा से है, जिसमें वास्तविक जीवन का यथार्थ चित्रण रहता है'। प्रेमचंद ने उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्रण मानते हुए लिखा है, 'मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके मूल रहस्यों को खोलना ही उपन्यास है'।

डॉ. श्यामसुंदर दास के अनुसार, 'उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है'।

हिंदी-उपन्यास अपनी शैलीगत विशिष्टता की दृष्टि से भले ही पाश्चात्य साहित्य विशेष रूप से अंग्रेजी-साहित्य के संपर्क और प्रभाव से हिंदी साहित्य में आया हो किंतु अपने कथा-तत्व की प्रमुखता की दृष्टि से उपन्यास की भारतीय परंपरा भी अत्यंत प्राचीन है। ऋग्वेद की जातक कथाएँ, यम-यमी-संवाद, पुरुरवा-उर्वशी-संवाद आदि में पर्याप्त कथा-तत्व है। इन्हें इतिहास नहीं कहा जा सकता। इनके वर्णन में जो रोचकता और कल्पना का गुण पाया जाता है वह इन्हें उपन्यास के निकट ही ले जाता है। कहने का अभिप्राय यह है कि प्राचीन साहित्य में चाहे वह संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश किसी का भी हो कथा-साहित्य का अभाव नहीं है। इस कथा-साहित्य के द्वारा प्राचीन कथाकारों ने मानव-जीवन के अनेक रहस्यों, सत्यों और उलझनों को प्रस्तुत करने के साथ ही साथ इनके समाधान पर भी प्रकाश डाला है।

आधुनिक कल में जिस समय हमारे देश में पाश्चात्य साहित्य और संस्कृति के संपर्क के कारण राष्ट्रीय जागरण की देशव्यापी लहर उत्पन्न हो रही थी और राष्ट्रीय जागरण में अपने

उत्तरदायित्व की महती भूमिका निभाने के लिए हिंदी गद्य-पद्य और उसकी विभिन्न विधाओं का जन्म हो रहा था, उसी समय हिंदी-गद्य की अन्य विधाओं के साथ-साथ उपन्यासों का भी सूत्रपात हुआ। हिंदी उपन्यास के इस विकास-यात्रा को हम तीन भागों में बाँट सकते हैं-

प्रथम चरण : हिंदी उपन्यासों का आरंभ बांग्ला और मराठी भाषा क उपन्यासों के अनु से आरंभ होता है। यद्यपि बांग्ला और मराठी भाषा का साहित्य भी हिंदी साहित्य की ही भाँति आरंभ में पद्यमय था, किंतु उन भाषाओं में हिंदी-भाषा की अपेक्षा गद्य-साहित्य का आरंभ अपेक्षाकृत पहले आरंभ हुआ। हिंदी सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास का होने का श्रेय श्रीनिवास दास को प्राप्त होता है सन् 1882 में मौलिक उपन्यास 'परीक्षा गुरु' का प्रकाशन हुआ। श्रीनिवास दास जी के बाद अनेक दूसरे उपन्यासकारों ने भी उपन्यास रचना का काम प्रारंभ किया। इस काल के दूसरे प्रमुख उपन्यास नूतन ब्रह्मचारी, सौ अजान और एक सुजान, लवंग लता, कुसुम कुमारी आदि है। यहाँ गोपाल राम गहमरी का नाम लेना बहुत आवश्यक हो जाता है। उन्होंने जासूसी और ऐयारी से संबंधित उपन्यासों की रचना की। यह हिंदी साहित्य की बहुत बढ़ी उपलब्धि थी। "चंद्रकांता' ऐसी ही उपन्यास है।

प्रथम वर्ग के उपन्यासों में तत्कालीन समाज की बदलती हुई परिस्थितियों में नए आदर्शों का वर्णन प्राप्त होता है साथ ही साथ कल्पित राजवर्ग और उससे संबंधित जासूसी, षड़यंत्र, ऐयारी आदि का वर्णन भी देखने को मिलता है।

द्वितीय चरण : हिंदी उपन्यास साहित्य में प्रेमचंद के पदार्पण के साथ ही उपन्यास साहित्य के द्वितीय चरण का कायाकल्प हो जाता है। प्रेमचंद ने एक नई राष्ट्रीय चेतना लेकर उपन्यास लिखना प्रारंभ किया था। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन और राष्ट्रीय चेतना ने एक संगठित शक्ति का रूप ग्रहण कर लिया था इस शक्ति को और अधिक प्रज्वलित प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों के द्वारा किया। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में निम्न वर्ग, माध्यम वर्ग, किसान वर्ग और मजदूर वर्ग के जीवन की आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक आदि समस्याओं को स्थान प्रदान किया और साथ ही इन समस्याओं का निवारण कैसे हो इसका आदर्शात्मक समाधान प्रस्तुत किया। गोदान, गबन, रंगभूमि, कर्मभूमि, सेवसादन आदि प्रेमचंद द्वारा लिखित प्रमुख उपन्यास है। इस युग के दूसरे प्रमुख उपन्यास रहें - कंकाल, तितली, विमाता, अमर अभिलाषा, वैशाली की नगरवधू, परख, सुनीता, अप्सरा, बिल्लेसुर बकरिहा आदि।

द्वितीय चरण : इस चरण के उपन्यासकारों ने मानव जीवन की समस्यायों को जागृत करने के साथ ही साथ मनोविश्लेषण को भी अपनी उपन्यासों का विषय बनाया। इस चरण के उपन्यासों में सामाजिक, पारिवारिक कुंठाओं को भी स्थान मिला। समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार का नग्न चित्रण उपन्यासों के द्वारा किया गया।

तृतीय चरण : प्रेमचंद की सजग सामाजिक जीवन के चित्रण की परंपरा को अधिक यथार्थवादी रूप में लेकर लिखी जानेवाली प्रगतिवादी विचार धारा को हिंदी उपन्यास साहित्य के तृतीय चरण के रूप में स्वीकार करना उचित कार्य है। प्रगतिवादी उपन्यासों में मजदूरों,

किसानों और माध्यम वर्ग के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक संघर्षों का चित्रण देखने को मिलता है। इनमें निम्न वर्ग की उभरती शक्ति और चेतना को मुखरित किया गया है। पिछले कई दशक में हिंदी-उपन्यास ने अभूतपूर्व उन्नति की है। शिल्प और चेतना दोनों ही दृष्टियों में कई नए प्रयोग किया गए है। और यह सभी प्रयोग सफल भी हुए है। आज देश-काल उपन्यास में वर्णित घटनाओं की पार्श्वभूमि न रह कर उपन्यास के पात्रों का अवयव बनकर पाठकों के समक्ष आता है। 'आज उपन्यास का ध्येय हो गया है, कथा कहना और उसे सीमित रूप में कहना। उपन्यासकार-देश काल का विस्तृत वर्णन करने से अथवा सिनेमा का फोटोग्राफर बनने से और मनोविज्ञान का विशेषज्ञ बनने से भयभीत होता है'।

बोध प्रश्न

- 'फिक्शन' शब्द का अर्थ क्या है?
- हिंदी उपन्यास की विकास यात्रा को कितने भागों में बाँट सकते हैं?
- 'परीक्षा गुरु' का प्रकाशन काल क्या है?

12.3.2 उपन्यास के तत्व

मुंशी प्रेमचंद उपन्यास को मानव जीव का इतिहास मानते थे। उपन्यास कथा-साहित्य का का चरम विकास है। 'जो हो चुका हो', उसे उलट-पुलटकर और कल्पना का रंग देकर उपन्यासकार 'जो हो सकता है' की संभावना व्यक्त करता है। इस प्रक्रिया को पूरी करने के लिए उपन्यासकार 6 तत्वों का सहारा लेता है। ये 6 तत्व कौन से हैं? आइए उनकी जानकारी हम प्राप्त करें-

कथानक अथवा कथावस्तु

कथानक शब्द का अंग्रेजी रूपांतरण होगा - 'प्लॉट'। उपन्यास का कथानक ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक आदि कुछ भी हो सकता है। उपन्यास में केवल एक ही कथानक मुख्य आवेश होता है लेकिन उस मुख्य कथानक को आगे बढ़ाने के लिए अर्थात, गति प्रदान करने के लिए अनेक सहायक कथाओं का सहारा लिया जाता है। इस प्रकार की कथाओं को 'सहायक कथानक' कहा जाता है। उपन्यास के कथानक में गतिशीलता होने के साथ ही साथ उत्सुकता का होना भी बहुत आवश्यक है। उपन्यास के कथानक में पारस्परिक संबद्धता, वैचारिक मौलिकता, घटनात्मक सत्यता, शैलीगत निर्माण-कौशल, वर्णनात्मक रोचकता के गुणों का रहना बहुत आवश्यक है।

पात्र एवं चरित्र चित्रण

कहानी की तुलना में उपन्यास में पात्रों की संख्या अधिकतर अधिक ही देखी जाती है। लेकिन आजकल कुछ आधुनिक उपन्यासकार कम पात्रों को लेकर भी उपन्यास रचना का काम कर रहे हैं। चूँकि, उपन्यास लंबे होते हैं इसलिए यहाँ पात्रों को अपने चरित्र को विकसित करने का बहुत अच्छा अवसर मिलता है।

कथोपकथन अथवा संवाद योजना

यह तत्व वैसे तो नाटक का महत्वपूर्ण यंग है लेकिन उपन्यास में भी संवाद योजना का महत्व कम नहीं है। उपन्यासों के संवाद संक्षिप्त, सरल और स्वाभाविक होने चाहिए। लंबे संवाद अस्वाभाविक प्रतीत होने लगते हैं। उपन्यासकार किसी भी घटना अथवा गतिविधि का स्वयं वर्णन कर सकता है इसके लिए पात्रों के संवाद योजना की आवश्यकता नहीं पड़ती। उपन्यासों की संवाद योजना में मनोवैज्ञानिकता के साथ-साथ उद्देश्य का रहना भी आवश्यक है।

भाषा शैली

उपन्यास की भाषा उसके प्रकार पर निर्भर करती है। अर्थात, जिस पृष्ठभूमि को लेकर उपन्यास लिखा जाता है भाषा शैली भी उसी प्रकार की होती है। प्राचीन उपन्यासकार भाषा की शुद्धता पर अधिक ध्यान देते थे, आजकल के अधिकांश उपन्यासकार सरल भाषा में लिखा करते हैं। उपन्यास की भाषा शैली कहानी के समान अनेक प्रकार की हो सकती है।

देशकाल और वातावरण

उपन्यासकार के पास स्थान और समय की न्यूनता नहीं होती। वह विस्तार से देश और काल का परिचय दे सकता है। वातावरण की सफलता इसी में है कि उपन्यास पढ़नेवाला स्वयं को उसी वातावरण से घिरा समझने लगे, जिसका निर्माण उपन्यासकार ने किया है। वातावरण सामाजिक, पारिवारिक, ग्रामीण, राजनीतिक आदि किसी भी प्रकार का हो सकता है।

उद्देश्य

उपन्यास की रचना में लेखक का कोई न कोई उद्देश्य छिपा रहता है। पहले आदर्शवादी उपन्यास ही अधिक लिखे जाते थे। आजकल के अधिकतर उपन्यास यथार्थवादी हुआ करते हैं। कुछ उपन्यासकार ऐतिहासिक परिवेश में वर्तमान काल की समस्याओं का समावेश कर देते हैं।

शीर्षक

कहानी के समान ही उपन्यास का शीर्षक भी महत्वपूर्ण होता है। जिस प्रकार शीश से मनुष्य पहचाना जाता है, उसी प्रकार शीर्षक उपन्यास की पूर्ण पहचान बनाता है।

ऊपर दिए गए वर्णना के आधार पर उपन्यास के तत्वों का गहन विश्लेषण हम कर चुके हैं।

बोध प्रश्न

- उपन्यास को प्रेमचंद क्या मानते थे?
- कथानक शब्द का अंग्रेजी रूपांतर क्या है?

12.3.3 उपन्यासों का विभाजन

शैली शिल्प की दृष्टि से सन् 1960 के बाद भारतीय समाज में जो मोह-भंग उत्पन्न हुआ और आपसी संबंध अर्थहीन हो गए इससे जीवन का प्राचीन विचारधारायें असत्य सिद्ध होने

लगी। इस परिवर्तन से हिंदी उपन्यास साहित्य अछूता नहीं रह सका। फलतः उपन्यास रचना की शैली में भी परिवर्तन आया। डॉ. गणपति चन्द्रगुप्त ने अपने 'हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' के द्विखंड में हिंदी उपन्यास की नवीनतम प्राप्ति के शीर्षक से लिखा है कि सन् 1960 के पश्चात हिंदी उपन्यास ने अनेक नवीन प्रवृत्ति का विकास किया। इस विकास को मुख्य रूप से चार भागों में विभाजित किया जा सकता है। वे भाग निम्नलिखत हैं - व्यक्ति चेतना से अनुप्राणित उपन्यास, समाज चेतना से अनुप्राणित उपन्यास, राजनीतिक चेतना से अनुप्राणित उपन्यास और सांस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित उपन्यास।

इन चारों प्रकार के उपन्यासों के शैली शिल्प का संक्षिप्त विवरण नीचे परास्त की जा रहा है -

1. व्यक्ति चेतना से अनुप्राणित उपन्यास

इस वर्ग में उन उपन्यास लेखकों को रक्खा गया है जिन्होंने व्यक्ति के अहं, हर्ष, गर्व, वासनाओं, कुंठाओं आदि का विवरण एवं चित्रण परिवार, समाज एवं संस्कृति के परंपरागत आयामों की उपेक्षा करते हुए किया है। उन्होंने यौन समस्याओं से ग्रसित व्यक्तियों के जीवन को पाठकों समक्ष रखा है। इनका यह प्रयास कुछ हद तक सही है लेकिन फिर भी यह कहना पड़ेगा कि यथार्थ एवं नवीनता के नाम पर इन उपन्यासों में नंगापन अधिक है। इस वर्ग के प्रमुख उपन्यासकार – मोहन राकेश, निर्मल वर्मा, शरद देवरा, राजकमल चौधरी, कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा आदि है। एक पति के नोट्स, दूसरी बार, मित्रो मरजानी, रुकोगी नहीं राधिका इस वर्ग के प्रमुख उपन्यास है।

2. समाज चेतना से अनुप्राणित उपन्यास

इस वर्ग के उपन्यासकारों ने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बीसवीं सदी में भारत में कौन-कौन से परिवर्तन हुए उन परिवर्तनों का अच्छा और बुरा प्रभाव क्या रहा? इन सब का विश्लेषण अपनी रचनाओं के द्वारा किया। श्रीलाल शुक्ल ने अपने उपन्यास 'राग दरबारी' में ग्रामीण जीवन का वर्णन करते हुए गाँव में विभिन्न वर्गों की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों के साथ ग्राम पंचायतों की दलबंदी, गुटबंदी तथा चुनावों में जीत के हथकंडों आदि पर व्यंग्यपूर्ण शैली में प्रकाश डाला है। विवेकी राय के उपन्यास 'लोक ऋण' में भी बिहार और उत्तर प्रदेश के पिछड़े क्षेत्रों की ग्रामीण जनता के जीवन का अंकन किया है।

3. राजनीतिक चेतना से अनुप्राणित उपन्यास

इस वर्ग के उपन्यासों में प्रमुखता बद्री उज्जमा के दो उपन्यासों - 'एक चूहे की मौत' तथा 'छठा तन्त्र' के अतिरिक्त राही मासूम रजा के उपन्यास 'कटरा की आरजू', शिवसागर मिश्र के 'जन में जय बचा' का नाम लिया जा सकता है। डॉ. शशिभूषण सिंहल ने 'जानी-अनजानी राहें' में भारतीय राजनीतिक वातावरण का चित्रण करते हुए आधुनिक राजनीति की विषमताओं का

उद्घाटन किया है। हृदयेश का 'सफेद काला घोड़ा सवार' प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार को उद्घाटित करता है।

4. सांस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित उपन्यास

इस वर्ग के उपन्यासकारों में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, नरेंद्र कोहली, वीरेंद्र कुमार जैन के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'अनामदास का पोथा' उपन्यास में उपनिषदों में प्राप्त संकेतों के आधार पर ऋषि रैक्क और राजकुमारी जाबाला के प्रणय का वर्णन किया है। द्विवेदी जी ने उस युग की संस्कृति तथा जीवन पद्धति पर प्रभावशाली प्रकाश डाला है। नरेंद्र कोहली ने परंपरागत रामकथा को अपने चार उपन्यासों में विभक्त किया है - दीक्षा, अवसर, संघर्ष की ओर तथा युद्ध। इन उपन्यासों के माध्यम से कोहली जी ने अपने युग को एक नया संदेश दिया है। उन्होंने रामकथा का आधुनिकीकरण किया है।

इस प्रकार से हम देखते है की सन् 1960 के बाद किस प्रकार से उपन्यास साहित्य में परिवर्तन आया और इस परिवर्तन के द्वारा उपन्यास और उपन्यासकार दोनो वर्गों के पास कैसे नए विषय आते गए।

बोध प्रश्न

- शैली के दृष्टि से उपन्यास साहित्य को कितने भागों में बाँटा है?
- नरेंद्र कोहली ने परंपरागत रामकथा को अपने उपन्यास में कितने भागों में बाँटा है?

12.3.4 प्रेमचंद व्यक्तित्व और कृतित्व

प्रेमचंद जी का जन्म सन् 1880 में बनारस के लमही नामक गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम अजायब राय और माता का नाम आनंदी देवी था। प्रेमचंद जब 8 वर्ष के थे तभी उनकी माता का का देहांत हो गया। घर में विमाता का प्रवेश हुआ। विमाता उन पर अत्याचार किया करती थी। बालक अपने जीवन के दुखों को भूलने के लिए बहुत छोटी उम्र में ही साहित्य रचना करने लगे थे। प्रेमचंद के बचपन का नाम धनपतराय था, किंतु उनके चाचा नवाबराय बुलाते थे। प्रेमचंद का विवाह 15 साल की अवस्था में ही हो गया था। लेकिन उनका दाम्पत्य जीवन सुखी नहीं हो सका। प्रेमचंद जी ने पहले अध्यापक के रूप में काम करना शुरू किया फिर सब-डिप्टी-इंस्पेक्टर के रूप में भी काम किया। गांधी जी के विचारों से प्रभावित होकर उन्होनें सरकारी नौकरी से त्याग पत्र दे दिया। इसके बाद से उन्होंने साहित्य साधना को ही अपने जीवन का प्रमुख लक्ष्य बना लिया।

प्रेमचंद ने सबसे पहले उर्दू में साहित्य रचना का काम शुरू किया था। सन् 1901-1915 तक का समय प्रेमचंद की उर्दू रचनाओं के लिए बहुत महत्वपूर्ण रहा। सन् 1901 में उन्होंने उर्दू में 'प्रेमा' नामक उपन्यास को लिखा। सन् 1904 से उन्होनें कहानी रचना का कार्य भी प्रारंभ कर दिया। इसके बाद उन्होंने 4-5 कहानियों की एक और संग्रह प्रकाशित की। जिसका नाम था 'सोजे वतन'। इस संग्रह में राष्ट्रीयता की भावना मुखर थी, इसलिए इस संग्रह की समस्त रचनाएँ सरकार

ने ज़ब्त करवा ली और उन्हें जला डाला। सन् 1907 में उनकी प्रथम कहानी 'संसार का अनमोल रत्न' उर्दू के प्रसिद्ध पत्र 'जमाना' में प्रकाशित हुई। प्रेमचंद उर्दू में नवाबराय के नाम से लिखा करते थे। हिंदी में प्रेमचंद नाम से ही लिखा करते थे। हिंदी में उनका पहला कहानी संग्रह 'सप्त सरोज' के नाम से प्रकाशित हुआ। प्रेमचंद जी केवल साहित्यकार ही नहीं थे बल्कि बहुत अच्छे संपादक भी थे। मर्यादा, माधुरी, हंस, जागरण नामक पत्रिकाओं का सफल संपादन किया था। 'हंस' के कारण से उन्हें हिंदी सिनेमा जगत में प्रवेश करने का अवसर भी प्राप्त हुआ, लेकिन फिल्म जगत में उन्हें सफलता प्राप्त नहीं हुई। सन् 1936 में उनकी मृत्यु हुई।

बोध प्रश्न

- प्रेमचंद के पिता का नाम क्या था?
- प्रेमचंद की माता का नाम क्या था?
- सोज़े वतन को अंग्रेजों ने क्यों ज़ब्त कर लिया?

12.3.4.1 प्रेमचंद उपन्यासकार के रूप में

प्रेमचंद को हिंदी उपन्यास साहित्य का प्रवर्तक माना जाता है। इसी कारण से उनके समय को 'प्रेमचंद युग' के नाम से भी जाना जाता है। प्रेमचंद ने जीवनी-लेखकों के आधार पर श्री महावीर प्रसाद पोद्दार की प्रेरणा से 'सेवासदन' नामक उपन्यास को हिंदी में लिखा और तब से वे निरंतर लिखते चले गए। इसके पश्चात उन्होंने रूठी रानी, वरदान और प्रतिज्ञा आदि उपन्यासों को लिखा। सन् 1900–1906 के बीच में इन रचनाओं को रचा गया। सेवासदन उनकी तीसरी औपन्यासिक रचना है जिसे गोरखपुर में सन् 1916 में प्रकाशित किया गया। सेवासदन का उर्दू रूप 'बाजार-हुस्न' लाहौर से सन् 1911 के मध्य में दो किश्तों में प्रकाशित हुआ था। डॉ.कमल किशोर गोएनका के शब्दों में कहा जा सकता है कि, 'सेवासदन के एक बेहतरीन नॉवेल होने का एक कारण यह भी है कि लेखक एक प्रचारात्मक लेखक के रूप में न आकर एक कलाकार के रूप में सामने आता है'। भारत के राजनीतिक और सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्र प्रेमचंद द्वारा जिस तरह सामने आया, वह बात साहित्यकारों को असंभावित सी ही लगी। उनके उपन्यासों में आदर्शोन्मुख यथार्थ के चित्रण के द्वारा जीवन संघर्ष और चेतन-जगत के सुंदर समन्वय हुआ है। उनका 'गोदान' भारत के समाज का यथार्थ और सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत करनेवाला महाकाव्य है। प्रेमचंद के महत्व को प्रस्तुत करते हुए कहा गया है, 'गोदान के रचयिता प्रेमचंद जी हिंदी के वर्तमान और भविष्य के निर्देशक है। प्रेमचंद उस शिखर के समान है, जिसके दोनों और पर्वत के दोनों भागों के उतार-चढ़ाव है।

प्रेमचंद का कहना था कि जिस साहित्य से हमारी सुरुचि न जागे, आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति न मिले, हमारा सौन्दर्य प्रेम न जाग्रत हो, जो हमें सच्चा संकल्प और कठिनाईयों पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता न प्रदान करें, वह हमारे लिए बेकार है, वह साहित्य कहलाने का अधिकारी नहीं है। उनकी स्पष्ट घोषणा थी, 'मुझे यह कहने में हिचक नहीं की मैं और चीजों की

तरह कला को उपयोगिता की तुला पर तोलता हूँ। कलाकार अपनी कला में सौन्दर्य की सृष्टि करके परिस्थिति को विकास के लिए उपयोगी बनाता है'।

प्रेमचंद ने उपन्यास को जीवन का चित्रण माना है। प्रेमचंद के सभी उपन्यासों का कथाधार मानव-जीवन है। प्रेमचंद के उपन्यासों के पात्र इस धरती के ही पुत्र है। मानवीय गुण-दोषों से वे युक्त हैं। उनकी मनोदशा तथा उनके कार्यकलापों से हमारा तादात्म्य होता रहता है। अधिकांश पात्र ग्रामों के शोषित कृषक और पूँजीपतियों द्वारा त्रसित है। प्रेमचंद ने पात्रों की मुद्रा मनःस्थिति, मन के रहस्यों, पात्र के स्वभाव, विचारधारा आदि में परिवर्तन को भी अपने शब्दों में प्रकट किया है। एक प्रकार से उनके उपन्यासों का कथानक तात्कालिक सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन का इतिहास है।

प्रेमचंद युग-जीवन की समस्याओं और उनके समाधानों को अपने उपन्यासों के द्वारा समाज के सामने लाना चाहते थे। उन्होनें यथार्थ के बीच से आदर्श को झाँककर देखा था। ऐसा साहित्य जिससे मानवकल्याण न हो, उनकी दृष्टि में व्यर्थ था। अपने साहित्य-सृजन-विषयक उद्देश्य के संबंध में उन्होनें स्वयं लिखा है, 'साहित्य का सबसे ऊँचा आदर्श यह है कि उसकी रचना केवल कला की पूर्ति के लिए की जाए। पर कला के लिए कला का समय वह होता है, जब देश संपन्न और सुखी हो। जब हम देखते हैं कि मानव भाँति-भाँति के राजनीतिक और सामाजिक बंधनों में जकड़े हुए हैं, जिधर निगाह उठती है, दुख और दरिद्रता के भीषण दृश्य दिखाई देते हैं, विपत्ति का करुण क्रंदन सुनाई देता है, तो कैसे संभव है कि किसी विचारशील प्राणी का हृदय पिघल न उठे'।

उपन्यासकार के रूप में प्रेमचंद ने हिंदी भाषा के परिनिष्ठित रूप को अपनाने के साथ ही साथ अशिक्षित पात्रों की भाषा में जहाँ स्थानीय तथा तद्भव शब्दों का प्रयोग किया है। अंतर्द्वंद्व के चित्रण में प्रेमचंद की भाषा को विशेष सफलता मिली है।

12.3.4.2 'रंगभूमि' : कथानक

प्रेमचंद द्वारा लिखित 'रंगभूमि' उपन्यास अपने समय का महत्वपूर्ण उपन्यास है। इसकी रचना तिथि सन् 1924-25 है। काशी के बाहरी भाग में पांडेपुर गाँव को 'रंगभूमि' की कथा स्थल बनाया गया है। ग्वाले, मजदूर, गाड़ीवान और खोमचेवालों की इस गरीब बस्ती में एक गरीब और अंधा चमार रहता है - सूरदास। वह है तो भिखारी परंतु पुरखों की 10 बीघा धरती भी उसके पास है, जिसमें गाँव के ढोर विचरते हैं। सामने ही एक ख्याल का गोदाम है, जिसका आढ़ती है एक ईसाई जॉन सेवक। वह सिगरा मुहल्ले का निवासी है। इस जमीन पर उसकी बहुत दिनों से निगाह है, वह इस पर सिगरेट का कारखाना खोलना चाहता है। सूरदास किसी भी तरह अपने पुरखों की निशानी उस धरती को बेचने के लिए जब राजी नहीं होता है तो जॉन सेवक अधिकारियों से मेल-जोल का सहारा लेकर उसके मन को बदलने का प्रयास करता है। जॉन सेवक की बेटी थी सोफिया। सोफिया के कारण से ही राजा भरतसिंह और उसके परिवार से जॉन सेवक का परिचय संबंध स्थापित हुआ। राजा साहब के परिवार में चार प्राणी थे - पत्नी

रानी जाह्नवी, पुत्री इंदु, पुत्र विनय और स्वयं राजा साहब। एक दिन अपने स्वयंसेवकों के साथ आग बुझाने का अभ्यास करते हुए आग की लपटों में फँस जाता है। संयोग से सोफिया अपनी माँ से झगड़ा कर उधर जा निकली थी। वह आग में कूदकर विनय को बचा लाई। आग ने उसे कई जगह झुलस दिया। विनय के माता-पिता सोफिया को अपने साथ ले गए और उसका इलाज कराया। वे उसके प्रति स्नेहासिक्त हो गये थे कि उसे अपने ही घर रखने के बारे में सोचने लगे। राजा साहब की बेटी इंदु, सोफिया की सहपाठिनी और सखी थी, उसका विवाह छतारी के राजा महेंद्र कुमार से हुआ था। राजा महेंद्र कुमार सिंह बनारस म्युनिसिपल बोर्ड के अध्यक्ष थे। इंदु के द्वारा महेंद्र कुमार जॉन सेवक और सोफिया को थोड़ा बहुत जानने-पहचानने लगे थे। जॉन सेवक ने इस संयोग का पूरा-पूरा लाभ उठाया। एक ओर उसने राजा भरत सिंह को अपने कारखाने के शेयर खरीदने के लिए राजी कर लिया तो दूसरी ओर राजा महेंद्र कुमार सिंह से सूरदास की जमीन दिलवा देने की हामी भी भरवा ली। उस समय बनारस का जिला-अधिकारी क्लार्क नाम का अंग्रेज था। वह सोफिया पर आसक्त था और उसके लिए सोफिया के माता-पिता को भी वह अपने पक्ष में कर चुका था। सोफिया उससे मिली और हठ कर के राजा महेंद्रकुमार के आदेश को रद्द करवाकर क्लार्क से आज्ञा जारी करवा दी कि सूरदास की जमीन किसी को नहीं मिल सकती। लेकिन राजा महेंद्र कुमार ने गवर्नर से मिलकर सूरदास की जमीन जॉन सेवक के नाम करवा दी। क्लार्क का उदयपुर के लिए तबादला हो गया।

कारखाना निर्माण और उसके साथ ही मजदूरों के लिए घर बनाने का क्रम रक्खा गया। जमीन प्राप्त करने के बाद मजदूरों के लिए घर बनाने की आवश्यकता हेतु पांडेपुर बस्ती पर निगाह डाली गई। पांडेपुर बस्ती को खाली करवाया जाने लगा प्रांतीय सरकार से लिखा पारी हुई। बस्ती के लोगों को मुआवजा लेकर अपना अपना घर छोड़ देने के लिए कह दिया गया लेकिन सूरदास अड़ गया। झोंपड़ी के सामने ही उसने सत्याग्रह कर दिया। झगड़े ने आंदोलन का रूप धारण कर लिया। सूरदास की मदद के लिए इंद्रदत्त, सोफिया और विनय आ गए। दूसरी ओर, आंदोलन को दबाने के लिए फौज आ धमकी। आंदोलन बढ़ता ही गया। गोलियाँ चलीं, इंद्रदत्त शहीद हो गया। सूरदास को गोली लगी और विनय जब मंच पर आया तो जनता ने उस पर व्यंग्य करना शुरु कर दिया। अशांत जनता को शांत करने के लिए तथा फौज की गोलियों से बचाने के लिए विनय ने अपनी ही रिवाल्वर से अपने साइन में गोली मार दी। इस आत्मबलिदान से हतप्रभ जनता ने आंदोलन को रोक दिया। सूरदास को अस्पताल पहुँचाया गया लेकिन वह नहीं बचा। जनता ने सूरदास की झोपड़ी के सामने ही उसकी मूर्ति स्थापित कर दी। राजा महेंद्र कुमार रात में उसे मिटाने के लिए जाते हैं और उस मूर्ति के नीचे ही दबकर मर जाते हैं। इस प्रकार राजा महेंद्र कुमार जीतकर भी हार जाते हैं और सूरदास हारकर भी विजय पा जाता है।

अति संक्षेप में हम 'रंगभूमि' की कथानक को इस प्रकार से समझ सकते हैं। 'रंगभूमि' की सृजन प्रक्रिया और उसकी आधारभूमि को समझने के लिए अंग्रेजों की व्यावसायिक नीति, मशीनी युग, औद्योगीकरण, शासन-नीति आदि क समझना होगा। प्रेमचंद औद्योगीकरण के पूर्णतः विरोधी नहीं थे। लेकिन अंग्रेज जिस प्रकार से भारतीयों के सर्वस्व को लूट रहे थे। इसका

प्रेमचंद हमेशा विरोधिता करते रहे। 'रंगभूमि' के कथा-शिल्प की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि लेखक ने सूरदास की कथा में दूसरे पात्रों को संयुक्त करके उनके व्यक्तित्व के विकास से उनकी व्यक्तिगत कथा को भी विकसित किया है। 'रंगभूमि' में कथा शिल्प को विकसित करने के लिए लेखक ने संकेत विधि का पर्याप्त उपयोग किया है। इसके लिए लेखक ने पात्र के संकल्प, आशंका, भविष्यवाणी आदि से भावी-कथा का संकेत किया है। 'रंगभूमि' की कथा को सुसंबद्ध बनाने के लिए लेखक पूर्णतः सचेष्ट रहे। 'रंगभूमि' में पात्रों की संख्या 100 से भी अधिक है। इनमें से 45 के लगभग तो नामधारी पात्र हैं और शेष पात्रों को लेखक ने अनाम ही छोड़ दिया है।

बोध प्रश्न

- 'रंगभूमि' की रचना तिथि क्या है?
- 'रंगभूमि' की कथा स्थल की पृष्ठभूमि कौन सा क्षेत्र है?
- सूरदास के पास कितनी बीघा जमीन थी?
- 'रंगभूमि' में पात्रों की संख्या कितनी है?

'रंगभूमि' के कथाक्रम का विकास

'रंगभूमि' की कथा को प्रेमचंद ने परिवार विशेष की कहानी कहते हुए तथा प्रमुख पात्रों का परिचय देना शुरू किया है। धीरे-धीरे कथा के भावी विकास के लिए सामग्री अर्थात विषय मिलने लगी और उपन्यास का विकास द्रुत गति से होने लगा। प्रेमचंद ने संकेत, भविष्यवाणी, समस्याओं के निराकरण आदि जैसी तरह-तरह की विधियों को अपनाकर 'रंगभूमि' के कथानक को विकसित करने का प्रयास किया है। जैसे सूरदास का ताहिरअली के सामने यह संकल्प करना कि, 'मेरे जीते-जी तो जमीन न मिलेगी, हाँ मर जाऊँ तो भले ही मिल जाए'। पाठक को यह संकेत तो मिल जाता है कि जमीन के लिए संघर्ष अवश्य होगा। यह संकेत पाठक को आगे बढ़ने का रोमांच भी प्रदान करता है। 'रंगभूमि' के कथानक में पेचीदगियों, उलझनों तथा बाधाओं की भरमार है, किंतु कथावस्तु का प्रवाह कहीं रुका नहीं है क्योंकि प्रेमचंद ने प्रत्येक समस्या का विस्तृत वर्णन किया है जैसे औद्योगीकरण की समस्या को ही लीजिए। यह समस्या ही सम्पूर्ण कथानक की रीढ़ है। सामंतवादी शोषण भी इसमें सम्मिलित है। एक और जॉन सेवक के हथकंडे है, तो दूसरी और सूरदास का संकल्प है। इस वैषम्य से भी कथानक आगे बढ़ती चली गई है। हमें यहाँ इस बात को ध्यान में रखना होगा कि प्रेमचंद ने 'रंगभूमि' उपन्यास में प्रमुख रूप से चार समस्याओं पर प्रकाश डाला है। ये समस्याएँ उपन्यास की प्राणतत्व होने के साथ ही साथ कथानक की विकास प्रक्रिया के भी प्रमुख अंग है। 'रंगभूमि' की पहली समस्या उद्योग और व्यवसाय से जुड़ी हुई है। इसमें पूँजीवाद को उन्होंने अपने लक्ष्य बने है। प्रेमचंद ने न केवल पूँजीवाद की भयंकर विभीषिका ही प्रस्तुत की है, वरन पूँजीवाद के कुछ दोष भी बताएँ है, जिनकी और सहज ही ध्यान नहीं जाता। पूँजीवाद मनुष्य के जीवन को कुत्सित बना देता है और उसमें बुर्जुआ मनोवृत्ति भर देता है। प्रेमचंद ने इसकी तीव्र निंदा की है। दूसरी समस्या धार्मिक है। धार्मिकता को भी इस उपन्यास ने समस्या के रूप में अपना लक्ष्य बनाया है। जैसा प्रसाद जी

ने अपने नाटकों में आवश्यकता से अधिक राष्ट्रीय उत्साह अभिव्यक्त किया है, उसी प्रकार से आवश्यकता से अधिक धार्मिक उत्साह इस उपन्यास में प्रेमचंद ने प्रकट किया है। सोफिया और विनय सिंह के माध्यम से धार्मिक स्वतंत्रता का पक्ष उन्होंने ग्रहण किया है। मिसेज सेवक की धार्मिक असहिष्णुता का विरोध सोफिया और प्रभु सेवक दोनों करते हैं। सोफिया घुटनशील वातावरण से निकलकर स्वतंत्र रूप से जीवनयापन करना चाहती है। वास्तव में प्रेमचंद का दृष्टिकोण भी यही रहा कि धार्मिक बंधनों से अधिक मानवतावाद को अधिक महत्व मिलना चाहिए। 'रणभूमि' उपन्यास के द्वारा उन्होंने स्थापित किया है कि 'मानव प्रेम के सम्मुख धर्म की सीमाएँ मूल्यहीन है'। तीसरी समस्या देशी रियासतों की है। इन पर भी प्रेमचंद ने अपने राष्ट्रीय विचार प्रकट किया है। जसवंतनगर में रहते हुए विनय सिंह जिस प्रकार का जीवन बिता रहे थे, वह कदाचित तत्कालीन देशी रियासतों की वास्तविक दश का ही सजीव चित्रण रहा। रियासतों का जीवन कितना प्रतिक्रियावादी हो गया था, अन्याय और शोषण कैसे चरमोत्कर्ष तक पहुँच गया था और साधारण जनता के लिए इन रियासतों के नीचे रहना कितना कष्टकर हो गया था इन सबका सजीव चित्रण 'रंगभूमि' में देखा जा सकता है। चौथी समस्या राजनैतिक है। प्रेमचंद का विश्वास था कि मनुष्य को सभी व्यक्तिगत कामनाओं और आकांक्षाओं से ऊपर उठकर निःस्वार्थ भाव से राष्ट्र-सेवा का व्रत लेना चाहिए। वे जाति को, समाज को, देश को केवल राजनैतिक दृष्टि से ही नहीं सभी दृष्टियों से जागृत होते हुए देखना चाहते थे। विनय सिंह की माता जाह्नवी के द्वारा उन्होनें इस बात पर प्रकाश डाला कि भारत को कैसी माताएँ चाहिए जो अपने पुत्रों को सही मार्ग दिखा सके।

'रंगभूमि' की कथानक की आधारशिला भले ही पांडेपुर में रखी गई है किंतु कथा के तीन केंद्र बन गए हैं - पहला केंद्र पांडेपुर है, जहाँ का नायक सूरदास है। दूसरा केंद्र काशी है जहाँ जॉन सेवक, सोफिया, विनय, राजा महेंद्र कुमार, इंदु आदि के माध्यम से घटनाक्रम आगे बढ़ता दिखाई पड़ता है और तीसरा केंद्र उदयपुर की रियासत है इस रियासत से संबंधित घटनाएँ जसवंतनगर और उसके समीपवर्ती क्षेत्रों में पल्लवित होती दिखाई पढ़ती है। तीन केंद्रों को एक ही कथानक के नीचे लेकर आगे बढ़ना आसान नहीं है लेकिन यह प्रेमचंद की विशेषता रही कि सभी कथाएँ साथ-साथ आगे बढ़ती हुई दिखाई पड़ती है। 'रंगभूमि' की कथा का विषय उस समय का सम्पूर्ण भारतीय समाज है। जीवन के अधिक से अधिक जीतने रूपों को चित्रित करना संभव हो सकता था, कथाकार ने उन सभी को अभिव्यक्त करने का पूर्ण प्रयत्न किया है - 'इसमें विश्व के तीन बड़े धर्म (हिंदू, मुसलमान एवं ईसाई), तीन वर्ग (पूँजीपति वर्ग, मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग) तथा मानवीय जीवन की तीन अवस्थाओं में चित्रित पात्र (वृद्ध-ईश्वर सेवक, युवक-विनय, शिशु-ईसू) उपलब्ध होते हैं'।

बोध प्रश्न

- 'रंगभूमि' उपन्यास में कितनी समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है?
- 'रंगभूमि' उपन्यास का कथानक पांडेपुर के अलावा और कहाँ-कहाँ तक फैला हुआ है?

- ‘रंगभूमि’ उपन्यास में जीवन की कितनी अवस्थाओं को देखा जा सकता है?

‘रंगभूमि’: कथानक के दोष

प्रेमचंद के ‘रंगभूमि’ उपन्यास की देशकाल एवं वातावरण के चित्रण की दृष्टि से अपनी एक महत्वपूर्ण विशिष्टता है। इसमें लेखक ने कथानक के अनुसार वातावरण का सृजन किया है। फिर भी वस्तु-शिल्प की दृष्टि से ‘रंगभूमि’ की कथानक में कुछ दोष आ ही गए हैं। पहला दोष यह है कि उक्त उपन्यास में कथाकार बीच-बीच में आकर टीका-टिप्पणी करने लगते हैं जिससे कहीं-कहीं पर कथानक की विकास गति प्रभावित हुई है। उदाहरणार्थ- जब सोफिया अपनी माँ से झगड़कर घर से निकल पड़ती है। तो उसके बचपन की याद जाग उठती है और उसे अपनी सहेली इंदु का स्मरण हो आता है। यहीं लेखक अपनी टिप्पणी भी देने लगते हैं, ‘मजबूरी में हमें उन लोगों की याद आती है, जिनकी सूरत भी विस्मृत हो चुकी होती है’...।

दूसरा दोष यह है कि कथानक में कुछ घटनाओं का आकस्मिक, अस्वाभाविक एवं अप्रासंगिक रूप से समावेश। इस दृष्टि से सोफिया का जलते हुए भवन को देखकर आग में कूद जाना, जल जाना, और इंदु का विनय के सम्मुख पहुँच जाना आदि। कभी-कभी तो ऐसा भी लगने लगता है कि विनय और सोफिया ही कथा के प्रमुख पात्र हैं। इनका पारस्परिक संबंध उतने घनिष्ठ रूप में स्थापित नहीं हो पाया है, जिस रूप में होना चाहिए था। ‘प्रेमाश्रम’, ‘निर्मला’ आदि उपन्यासों में जिस प्रकार से विभिन्न प्रेम संबंधों की कसावट देखी गई है उसकी कमी तो ‘रंगभूमि’ उपन्यास में अवश्य ही खली है।

तीसरा दोष यह है कि तत्कालीन समाज में व्याप्त कारुणिक दशा को चित्रित करने के लिए प्रेमचंद ने आवश्यकता से अधिक कारुणिक चित्रों को दर्शाया है जिनकी आवश्यकता नहीं थी। जैसे, इंद्रदत्त की मृत्यु गोली लगने से होती है, विनय आत्महत्या करते हैं, सोफिया गंगा में डूबकर गंगा प्राणांत करती है, सूरदास अस्पताल में मर जाते हैं और राजा महेंद्र कुमार सिंह सूरदास की प्रस्तर प्रतिमा के नीचे दबकर जन से हाथ धो बैठते हैं। ‘रंगभूमि’ के अंतिम पर्व में एक के बाद एक दुखद प्राणान्तों को दिखाया तो गया है लेकिन उससे उपन्यास प्रभावशाली बनने के बजाय बोझिल बन गया है।

‘रंगभूमि’ कथानक में भले ही कुछ दोष हो लेकिन हम फिर भी इस बात को नकार नहीं सकते हैं कि उपन्यासकार ने उक्त उपन्यास के द्वारा भारत समाज की संपूर्णता को गाथाबद्ध करने का प्रयास किया है। हिंदी साहित्य में इतनी बड़ी ‘रंगभूमि’ को लेकर, ‘रंगभूमि’ लिखने का साहस पर ने ही किया था। इसलिए इन कुछ दोषों को अनदेखा किया ही जा सकता है।

बोध प्रश्न

- ‘रंगभूमि’ उपन्यास का पहला दोष क्या है?
- ‘रंगभूमि’ के अंतिम पृष्ठों में एक के बाद एक कितनी मृत्यु को दिखाया गया है?

‘रंगभूमि’ कथानक का मूल उद्येश्य

उपन्यासकार प्रेमचंद के शब्दों में, 'साहित्यकार का काम केवल पाठकों का माँ बहलाना नहीं है, यह तो भाटों और मदारियों, विदूषकों और मसखरों का काम है। साहित्यकार का पद इससे कहीं ऊँचा है। वह दूसरा पथ-प्रदर्शक होता है, वह हमारे मनुष्यत्व को जागता है - हममें सदभावों का संचार करता है, हमारी दृष्टि को फैलाता है - कम से कम उसका यही उद्देश्य होने चाहिए'। प्रेमचंद की उपर्युक्त मान्यता उनके साहित्यिक स्वरूप को प्रकट करती है। उन्होंने ही सर्वप्रथम हिंदी-उपन्यास में उद्देश्य-पक्ष की महत्ता स्थापित करते हुए उसके विकास की दिशा मोड़ी। मानव-जीवन से असंबद्ध हिंदी का उपन्यास-साहित्य प्रेमचंद का सक्रिय दिशा-निर्देश पाकर जीवन की वास्तविकता की ठोस चट्टान पर आ खड़ा हुआ। मानव-जीवन की वास्तविकता 'रंगभूमि' की चित्रपटी है- संसार के मंच पर अभिनय करनेवाले मनुष्यों की रंगस्थली, सूरदास उसका नायक है। वह अंधा-अपाहिज है तो क्या हुआ, दुनिया में आया है तो अभिनय उसे भी करना ही पड़ेगा। संसार किसी को नहीं छोड़ता। यह 'रंगभूमि' के उद्येश्य का एक पक्ष है। सूरदास को सच्चाई तथा ईमानदारी के साथ उपन्यासकार ने जीवन का खेल मन लगाकर खिलाया है और उसने इस खेल म प्राणों की बाजी भी लगवा दी है। बात हार या जीत की हमेशा नहीं होती, पर जो हमारे हिस्से का खेल है उसे मन लगाकर खेलना जरूरी है। यह पाठकों को समझना लेखक का दूसरा प्रमुख उद्येश्य रहा। पाश्चात्य तथा पूर्वी सभ्यता का तुलनात्मक विवेचन भी 'रंगभूमि' में प्रस्तुत है। जिसके द्वारा प्रेमचंद ने भारतीय समाज के सम्मुख यह सांस्कृतिक प्रश्न भी उठाया है कि हमारी अंधानुकरण की प्रवृत्ति कहाँ तक उचित है? हम जो दूसरों का अनुकरण करते हुए अपने ही लोगों से दूर चले जाते हैं यह कितना उचित है? चाहे पांडेपुर के किसान-मजदूर हो या फिर उदयपुर के राजघराने के लोग अगर हम भारतीय एक-दूसरे से कटकर रहेंगे तो भला किसी का नहीं होगा। कुटिल क्लार्क, जॉन सेवक जैसे विदेशी हमें कहीं का नहीं छोड़ेंगे और हमारी संस्कृति को नष्ट कर देंगे। प्रेमचंद ने भारतीय समाज को, जो सदियों से अंधविश्वासी और रूढ़िग्रस्त होने के कारण मूक था। 'रंगभूमि' के द्वारा उसे वाचाल बना दिया। इसी संबंध में डॉ. इंद्रनाथ मदान का कहना था, 'प्रेमचंद' की कला का मूल उद्देश्य न तो चरित्र चित्रण है और न वस्तु-संगठन, वरन सुधार है। साहित्य के कार्य है - एक जीवन की व्याख्या करना और दूसरा जीवन को परिवर्तित करना। प्रेमचंद पिछले पर अधिक जोर देते है'।

बोध प्रश्न

- 'रंगभूमि' उपन्यास में प्रेमचंद ने किन दो संस्कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन किया है?
- प्रेमचंद ने 'रंगभूमि' के माध्यम से भारतीय समाज के सामने कौन सा प्रश्न रखा है?

12.3.5 'रंगभूमि : एक ऐतिहासिक उपन्यास

आपने ऊपर पढ़ा कि उपन्यास शैली का दूसरा भाग सामाजिक विषयों से अनुप्राणित रहा। इस भाग में लेखकों ने अपने उपन्यासों में तत्कालीन देश-काल का विशद वर्णन प्रस्तुत किया है। प्रेमचंद के द्वारा लिखित 'रंगभूमि' भी एक सामाजिक उपन्यास है। इसमें लेखक ने कथानक के अनुसार वातावरण का सृजन किया है। तत्कालीन समाज के गुण-दोषों को स्पष्ट

करने के लिए प्रेमचंद ने तदनुकूल सामाजिक विचार धारा और परिप्रेक्ष्यानुकूल वातावरण पर कथा को प्रतिष्ठित किया है। परिणामतः 'रंगभूमि' तत्कालीन भारतीय जीवन का प्रामाणिक रेकॉर्ड बन गया है, जिसमें व्यक्ति, समाज, परिवार, धर्म, राजनीति और इतिहास के दर्शन होते है। आइए, आगे हम देखेंगे 'रंगभूमि' में तत्कालीन समाज के किन-किन विषयों पर प्रकाश डाला गया है -

स्वाधीनता संग्राम का युग और उसका समाज

'रंगभूमि' का समाज भारत के स्वाधीनता संग्राम के युग का समाज है, जो औपनिवेशिक राजतन्त्र से संघर्षरत है। भारतीय जीवन-संघर्ष के ज मार्ग पर चल रहा था 'रंगभूमि' में उसका अत्यंत जीवंत विवरण उपल होता है। इस उपन्यास में आर्थिक तथा सामाजिक स्तरों पर पूँजीवाद के बढ़ते हुए प्रभाव का चित्रण भी उतना ही सटीक है, जितना लेखक ने पूँजीवाद से लड़ते हुए स्वाधीनता क आकांक्षा रखनेवाले भारतीय समाज का यथार्थ रूप अंकित किया है। सन् 1900 से सन् 1923 के बीच हुए कृषक आंदोलनों के राजनैतिक इतिहास की झलक ही 'रंगभूमि' में नहीं मिलती वरन उनके स्पष्ट चित्र भी, जो भारतीय समाज में एक परिवर्तन ला रहें थे उभरे है।

संस्कार बद्ध सामाजिक परिवर्तन

वातावरण का समग्र स्वरूप तभी उपस्थित होता है जब जीवन के अनुकुल और प्रतिकूल दोनों पक्ष अपने सहज स्वाभाविक रूप से समक्ष आते है। 'रंगभूमि' में चाहे सूरदास को लें, चाहे सुभागी को, चाहे विनय को, चाहे सूरदास को, उनमें अगर जीवन की उन्मुक्तता है तो संस्कारबद्धता भी विद्यमान है, अगर उनमें धर्म और अंध विश्वास के प्रति विरोध है, तो मानवीय पक्ष का सहानुभूतिपरक समर्थन भी है। प्रेमचंद स्वयं गाँव के थे जिस कारण से उन्हे गाव के सामाजिक वातावरण का पूर्ण ज्ञान था। गाव की धरती सर्वत्र और सदेव उनकी दृष्टि में भारत-भाग्य-विधात्री रही अपने इस विचार धारा को प्रेमचंद ने 'रंगभूमि' में विश्लेषित किया है।

क्षेत्रीय सीमाओं का उल्लंघन करता वातावरण

प्रेमचंद के वातावरण चित्रण की प्रमुख विशेषता यह है कि यह शुरू तो होता है स्थानीय रंग के यथार्थवादी चित्रण से, किंतु धीरे धीरे क्षेत्रीयता अन्तर्देशीय बन जाती है। पांडेपुर का वातावरण भारत के प्रत्येक गाव के वातावरण का दृश्य प्रस्तुत करता है। यह व्यापकता भारत की सांस्कृतिक व्यापकता है। देश-प्रदेश, भाषा-बोलचाल, वेश-भूषा, कर्मकांड, दिनचर्या, भाव-विचार सब मिलकर हमे यह अनुभव करा देते हाँ कि यह सारा सांस्कृतिक स्वरूप भारतीय है। 'रंगभूमि' क वातावरण चित्रण में जिस प्रकार प्रेमचंद ने क्षेत्रीयता को अन्तर्देशीय बनाया है, उसी प्रकार कालगत अन्विति की रक्षा करते हुए उन्होंने कालसीमा को इतिहास की पृष्ठ की भाँति कालातीत बना दिया है। यह व्यक्ति की उस दशा का 'मिथ' है जो स्वाधीनता के संघर्ष काल के बीच बन रही थी, इसलिए जहाँ यह सत्य है कि प्रेमचंद ने अपने समय के मनुष्य को

अपने उपन्यासों में प्रतिविम्बित किया, वहाँ यह भी सत्य है कि उपन्यासों का व्यक्ति उनके समय के बाद में आनेवाले व्यक्ति का आधार चरित्र है, अर्थात वह देशतीत भी है और कालातीत भी। 'रंगभूमि' के सूरदास, सोफिया, प्रभूसेवक और जॉन सेवक आई व्यक्ति है जो अपनी शाश्वत माँ प्रकृति को लेकर उस समय भी थे, आज भी है और शायद आगे भी मिलेंगे।

रंगभूमि के नगर और ग्राम

देशकाल और वातावरण पर विचार करने पर एक बात स्पष्ट होती है कि प्रेमचंद के उपन्यासों में नगर और ग्राम एक दूसरे के पूरक बनकर सामने आते है। उनकी सभी रचनाओं में इसे देखा ज सकता है। 'रंगभूमि' भी इससे अलग नहीं। 'रंगभूमि' का सूरदास विकेंद्रीयकरण के आदर्श की रक्षा के लिए, सामाजिक सुविधाओं के लिए तथा भूमि के लिए जीवन पर्यंत संघर्ष में लीन रहता है। वस्तुतः 'रंगभूमि' में पूँजीपतियों के उद्योग धंधों से गाँवों के आर्थिक स्थिति के दुर्बल हो जाने का वैज्ञानिक तर्क वर्ग-संघर्ष का रूप धारण करता है। इस प्रकार इस उपन्यास को तत्कालीन सामाजिक क्रिया व्यवहारों का दर्पण माना जा सकता है। प्रेमचंद ने 'रंगभूमि' में ग्रामीण वातावरण का सजीव रूप प्रस्तुत किया है - 'कार्तिक का महीना था। वायु में सुखद शीतलता आ गई थी। संध्या हो चुकी थी सूरदास अपनी जगह पर मूर्तिवान बैठा हुआ किसी इक्के या बग्घी के आशाप्रद शब्द पर कान लगाए था'।

तत्कालीन रियासतों की दशा

'रंगभूमि' में तत्कालीन रियासतों की जीवंत दशा को प्रेमचंद ने दर्शाया है। 'रंगभूमि' में इस समस्या का सूत्रपात उदयपुर रियासत के जसवंत नगर से होता है। प्रेमचंद ने इसमे दिखाया है कि उस समय भारतीय रियसतें ब्रिटिश पॉलिटिकल एजेंटों की कठपुतली जी रही थी। विनय से वार्तालाप करते हुए दीवान नीलकंठ कहते है - 'रियासतों को आप सरकार की हरमसरा समझिए, जहाँ सूर्य के प्रकाश का भी गुजर नहीं हो सकता। हम जब इस हरमसरा के हबशी ख्वाजासरा हैं। रेजिडेंट साहब की इच्छा के विरुद्ध हम तिनका तक नहीं हिला सकते'। इस दशा को देखकर विनय सोचता है - 'इतना नैतिक पतन, इतनी कायरता, यों राज्य करने से डूब मरना अच्छा है'। प्रेमचंद ने 'रंगभूमि' में शासन की निरंकुशता, रियासतों की पंगुता, अराजकता, अव्यवस्था, अन्याय तथा भ्रष्टाचार का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है।

12.4 पाठ सार

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन हमने इस बिन्दु से शुरू किया था कि क्यों प्रेमचंद को 'उपन्यास सम्राट' कहा जाना गलत नहीं होगा। अति संक्षेप में हमने यह देखा कि जयशंकर प्रसाद और प्रेमचंद की लेखन और चिंतन शैली में क्या अंतर है। हमने यह देखा भले ही हिंदी के लिए उपन्यास शब्द नया नहीं है लेकिन यह भी सही है कि सबसे पहले बांग्ला और मराठी उपन्यासों का अनुवाद हिंदी में किया गया। हिंदी उपन्यासों पर अंग्रेजी के नॉवेल यानि फिक्शन के प्रभाव को भी देखा जा सकता है जबकि ऋग्वेद की प्राचीन कथाओं को उपन्यास से कम समझना गलत ही होगा। हिंदी के सर्वप्रथम मौलिक उपन्यासकार होने श्रेय लाला श्रीनिवास

दास को जाता है। 'परीक्षा गुरु' 1882 को हिंदी का प्रथम मौलिक उपन्यास माना गया। इस समय काल को हिंदी उपन्यास का प्रथम चरण माना गया। प्रथम चरण के समस्त उपन्यास साहित्य को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। पहला - आचार, धर्म, नीति, समाज-सुधार आदि की भावना से प्रेरित सामाजिक एवं ऐतिहासिक उपन्यास, जिनमें उपदेश का स्वर अधिक रहा और दूसरा - शुद्ध मनोरंजन के लिए लिखे गए तिलस्मी और ऐयारी के उपन्यास। 'चंद्रकांता' का नाम दूसरी प्रकार के उपन्यासों में प्रमुख रूप से लिया जाता है। हिंदी उपन्यास साहित्य के विकास में द्वितीय चरण का आरंभ उपन्यास-क्षेत्र में प्रेमचंद के आगमन से ही स्वीकार किया जाता है। प्रेमचंद ने एक नई राष्ट्रीय चेतना लेकर उपन्यास लिखना प्रारंभ किया था। तीसरे चरण के उपन्यासों में प्रगतिवादी विचारधारा को अधिक महत्व मिला। आप विद्यार्थियों ने अध्ययन करते समय अवश्य ही यह समझा होगा कि हिंदी के समस्त उपन्यासों को देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि कथावस्तु की दृष्टि से इनके तीन वर्ग हैं - सामाजिक, ऐतिहासिक और पौराणिक। हमने प्रस्तुत इकाई में सन् 1960 के बाद उपन्यास रचना के शिल्प विधान में किस प्रकार से परिवर्तन आया इसका भी विस्तार से अध्ययन किया। हमने पाया कि सन् 1960 के बाद हिंदी उपन्यास शिल्प विधान के दृष्टि से चार भागों में विभाजित हो गई। ये चार भाग हैं - व्यक्ति चेतना से अनुप्राणित उपन्यास, सामाजिक चेतना से अनुप्राणित उपन्यास, राजनीतिक चेतना से अनुप्राणित उपन्यास और सांस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित उपन्यास।

विद्यार्थियो! इन सब जानकारियों के साथ ही साथ आपने प्रेमचंद द्वारा लिखित 'रंगभूमि' उपन्यास की कथानक का अध्ययन भी किया। आपने देखा काशी की बाहरी भाग में बसे पांडेपुर गाँव को 'रंगभूमि' का कथास्थल बनाया गया है। ग्वाले, मजदुर, गाड़ीवान और खोमचेवालों की इस गरीब बस्ती में एक गरीब और अंधा चमार रहता है जिसका नाम है - सूरदास। वह है तो भिखारी लेकिन उसके पास पुरखों की रखी हुई दस बीघा जमीन भी है। इसी दस बीघा जमीन के लिए जॉन सेवक का दिन प्रतिदिन बढ़ते रहनेवाला लालच उपन्यास को विकास गति प्रदान करता है और साथ ही साथ कारुणिक दृश्य भी। जमीन का यह लालच केवल छोटा स लालच नहीं है बल्कि यह पूँजीवाद और औद्योगीकरण की विभीषिका को दर्शानेवाला है। प्रस्तुत उपन्यास में वैसे तो सौ से अधिक पात्र है लेकिन लेखक ने 45 पात्रों को नाम दिया है बाकी को बेनाम ही छोड़ दिया है। आप सबने यह तो भलीभाँति समझ ही लिया है कि प्रेमचंद ने कभी केवल मनोरंजन के लिए साहित्य रचना का काम नहीं किया था। 'रंगभूमि' उपन्यास का भी अपना अलग महत्व और उद्देश्य है। मानव जीवन की वास्तविकता 'रंगभूमि' की चित्रपटी में उभर आया है। हमने यह पाया कि प्रेमचंद के द्वारा लिखित 'रंगभूमि' सही अर्थों में एक सामाजिक उपन्यास है। आप सबने यह तो भलीभाँति समझ ही लिया है कि प्रेमचंद ने कभी केवल मनोरंजन के लिए साहित्य रचना का काम नहीं किया था। 'रंगभूमि' की कथा को प्रेमचंद ने परिवार विशेष की कहानी कहते हुए तथा प्रमुख पात्रों का परिचय देना शुरू किया है। धीरे-धीरे कथा के भावी विकास के लिए सामग्री अर्थात विषय मिलने लगी और उपन्यास का विकास द्रुत गति से होने लगा। प्रेमचंद ने संकेत, भविष्यवाणी, समस्याओं के निराकरण आदि जैसी तरह-तरह की विधियों को अपनाकर 'रंगभूमि' के कथानक को विकसित करने का प्रयास किया

है। जैसे सूरदास का ताहिरअली के सामने यह संकल्प करना कि, 'मेरे जीते-जी तो जमीन न मिलेगी, हाँ मर जाऊँ तो भले ही मिल जाए'। पाठक को यह संकेत तो मिल जाता है कि जमीन के लिए संघर्ष अवश्य होगा। यह संकेत पाठक को आगे बढ़ने का रोमांच भी प्रदान करता है। 'रंगभूमि' के कथानक में पेचीदगियों, उलझनों तथा बाधाओं की भरमार है, किंतु कथावस्तु का प्रवाह कहीं रुका नहीं है 'रंगभूमि' उपन्यास का भी अपना अलग महत्व और उद्देश्य है। मानव जीवन की वास्तविकता 'रंगभूमि' की चित्रपटी में उभर आया है। संसार के मंच पर अभिनय करनेवाले मनुष्यों में से एक सूरदास भी है। संसार किसी को नहीं छोड़ता इसी कारण से सूरदास के हिस्से का संघर्ष उसे लगातार करना पड़ा। सूरदास के माध्यम से लेखक ने यह समझाया कि मानव-जीवन की वास्तविकता 'रंगभूमि' की चित्रपटी है- संसार के मंच पर अभिनय करनेवाले मनुष्यों की रंगस्थली, सूरदास उसका नायक है। वह अंधा-अपाहिज है तो क्या हुआ, दुनिया में आया है तो अभिनय उसे भी करना ही पड़ेगा। अपने हिस्से का खेल अर्थात कर्तव्य पूरी ईमानदारी से निभाना ही मनुष्य का सबसे पहला धर्म है। पाश्चात्य तथा पूर्वी सभ्यता का तुलनात्मक विवेचन भी 'रंगभूमि' में प्रस्तुत है। जिसके द्वारा प्रेमचंद ने भारतीय समाज के सम्मुख यह सांस्कृतिक प्रश्न भी उठाया है कि हमारी अंधानुकरण की प्रवृत्ति कहाँ तक उचित है? हम जो दूसरों का अनुकरण करते हुए अपने ही लोगों से दूर चले जाते हैं यह कितना उचित है? 'रंगभूमि' में लेखक ने स्वाधीनता संग्राम का युग और उस समय के समाज के दशा को दर्शाया है, संस्कारों के नाम पर होनेवाले अन्यायों का विरोध करते हुए उन्होंने संस्कार पालन की नवीन परिभाषा प्रस्तुत की है। हमे यह तो पता ही है कि प्रेमचंद के वातावरण चित्रण की प्रमुख विशेषता यह है कि यह शुरू तो होता है स्थानीय रंग के यथार्थवादी चित्रण से, किंतु क्षेत्रीयता अन्तर्देशीय बन जाती है। 'रंगभूमि' में भी यही हुआ है। पांडेपुर का वातावरण भारत के प्रत्येक गाँव के वातावरण का दृश्य प्रस्तुत करता है। यह व्यापकता भारत की व्यापकता है। राजनीतिक आयाम को छूते हुए सामाजिक स्थिति का सही विवरण प्रस्तुत करके 'रंगभूमि' में प्रस्तुत समस्याएँ जनजागरण का संदेश देती हैं। गाँव से लेकर नगरों तक की पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक समस्याएँ इस उपन्यास की विषयवस्तु बन गई है।

12.5 पाठ की उपलब्धियाँ

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद अब आप -

1. उपन्यासकार की रूप में प्रेमचंद को पहचान गए हैं।
2. 'रंगभूमि': कथानक को आप जान चूकें है।
3. सन् 1960 के बाद उपन्यास शिल्प विधान में किस प्रकार का परिवर्तन आया इससे आप परिचित हो गए हैं।
4. 'रंगभूमि' : एक सामाजिक कथानक क्यूँ कहला सकता है? इसका विस्तृत अध्ययन आपने किया है।

12.6 शब्द संपदा

1. कथानक = कहानी
2. चित्रपटी = कैनवास
3. विवरण = संपूर्ण जानकारी
4. व्यापकता = फैलाव
5. संस्कार = परंपरा से गृहीत विधि-विधान, परिमार्जन
6. स्थानीय = लोकल

12.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. 'रंगभूमि' एक सामाजिक कथानक इस विषय पर चर्चा कीजिए।
2. उपन्यास रचना की शैली में किस प्रकार के परिवर्तन देखने को मिले इस पर प्रकाश डालिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. 'रंगभूमि' की कथानक प्रकाश डालिए।
2. उपन्यासकार के रूप में प्रेमचंद की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए।

1. 'रंगभूमि' की रचना तिथि कौन सी है? ( )
   (अ) 1924-25 (आ) 1857-58 (इ) 1942-43 (ई) 1944-45
2. 'रंगभूमि' उपन्यास में कितने पात्र है? ( )
   (अ) 99 (आ) 100 (इ) 144 (ई) 101
3. राजा महेंद्र कुमार की परिवार में कितने सदस्य है? ( )
   (अ) 16 (आ) 33 (इ) 9 (ई) 4

4. 'रंगभूमि उपन्यास का नायक कौन है? ( )

(अ) सूरदास (आ) लक्ष्मीदास (इ) मानिकदास (ई) गुरुदास

II रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1. कथावस्तु की दृष्टि से हिंदी उपन्यास के .... वर्ग है।
2. 'सेवासदन' का उर्दू नाम .... है।
3. 'बाज़ार-हुस्न' का प्रकाशन लाहौर से सन् .... में हुआ।

III सुमेल कीजिए

1. सूरदास	(अ)	प्रेमचंद
2. जॉन सेवक	(आ)	दस बीघा
3. विनय	(इ)	नायक
4. निर्मला	(ई)	सोफिया

12.8 पठनीय पुस्तकें

1. रंगभूमि, प्रेमचंद
2. मुंशी प्रेमचंद एवं उनका उपन्यास 'रंगभूमि', डॉ. जगदीश शर्मा

इकाई : 16 'राग दरबारी' : एक व्यंग्यात्मक उपन्यास

रूपरेखा

16.1 प्रस्तावना
16.2 उद्देश्य
16.3 मूल पाठ : 'राग दरबारी' : एक व्यंग्यात्मक उपन्यास
16.3.1 व्यंग्य : अर्थ, परिभाषा
16.3.2 हिंदी उपन्यास में विशुद्ध व्यंग्य
16.3.2.1 रागदरबारी में प्रयुक्त राजनीतिक, प्रशासनिक व्यंग्य
16.3.2.2 रागदरबारी में प्रयुक्त सामाजिक, धार्मिक व्यंग्य
16.3.2.3 रागदरबारी में प्रयुक्त प्रशासनिक, न्यायिक व्यंग्य
16.3.2.4 रागदरबारी में प्रयुक्त शिक्षा जगत पर व्यंग्य
16.3.3 व्यंग्य में विकृति की पहचान और दृष्टि परिवर्तन
16.4 पाठ सार
16.5 पाठ की उपलब्धियाँ
16.6 शब्द संपदा
16.7 परीक्षार्थ प्रश्न
16.8 पठनीय पुस्तकें

16.1 प्रस्तावना

प्रिय पाठको! मानव सभ्यता अपने जीवन के विकास के लिए कई अविष्कार निरंतर करती आ रही है। मानव के सभी अविष्कारों में बोली, भाषा के अविष्कार को सर्वोत्तम स्थान दिया जाता है। हमारे आपस में विचार-विनिमय के कई रूप होते हैं। जब हम कोई बात श्रोता तक सीधे पहुँचाना चाहते हैं, तो अभिधात्मक शब्दों का प्रयोग करते हैं। वही अपनी बात श्रोता तक पहुँचाने के लिए किसी उदाहरण आदि का सहारा लेते हैं तो ऐसे समय में लक्षणा शब्द शक्ति का प्रयोग करते हैं। शब्दों का वह रूप जब हम श्रोता तक पहुँचाने के लिए चुनते हैं और वे श्रोता तक पहुँच कर विपरीत अर्थ को ध्वनित करने लगते हैं, तो ऐसे शब्द रूप को व्यंजना शब्द रूप कहते हैं।

श्रीलाल शुक्ल ने 'रागदरबारी' उपन्यास के लिए ऐसे ही शब्दों का चयन किया है। हिंदी साहित्य में व्यंग्य को लेकर गंभीरतापूर्वक रचना करने वाले रचनाकारों में हरिशंकर परसाई के सामानांतर श्रीलाल शुक्ल के कलम की धार है। इसी धार को प्रस्तुत पाठ में विवेचित किया जाएगा।

16.2 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ में श्रीलाल शुक्ल द्वारा रचित उपन्यास 'रागदरबारी' के निम्न बिंदुओं को विवेचित किया जाएगा -

1. व्यंग्य शब्द का अर्थ तथा परिभाषा का विस्तृत परिचय दिया जाएगा।
2. हिंदी उपन्यास में विशुद्ध व्यंग्य के प्रयोग पर प्रकाश डाला जाएगा।
3. व्यंग्य में विकृति की पहचान करते हुए व्यंग्य के प्रति साहित्यिक दृष्टि परिवर्तन को विवेचित किया जाएगा।
4. व्यंग्य के विविध क्षेत्रों में प्रयोग को चित्रित किया जाएगा।
5. श्रीलाल शुक्ल के व्यंग्य प्रयोग का विशेष अवलोकन किया जाएगा।

16.3 मूल पाठ : 'राग दरबारी' : एक व्यंग्यात्मक उपन्यास

हिंदी साहित्य में व्यंग्य विधा का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। 'रागदरबारी' श्रीलाल शुक्ल की सबसे अधिक प्रसिद्ध व्यंग्य रचना है। इस कृति के बहुआयामी धरातल को देखते हुए साहित्य अकादमी व्दारा इसे पुरस्कृत किया गया है। स्वातंत्र्योत्तर गद्य विधाओं में व्यंग्य का अत्यधिक विकास हुआ। व्यंग्य को लेकर श्रीलाल शुक्ल ने भारतीय कस्बाई जीवन की मूल्यहीनता को अनावरित किया है। इस उपन्यास की रचनात्मक यात्रा सन् 1964 से शुरू होकर सन् 1967 तक रही। सन् 1968 में इसका प्रकाशन हुआ तथा सन् 1969 में इस कृति पर साहित्य अकादमी पुरस्कार श्रीलाल शुक्ल को दिया गया। इसकी पाठकीय स्वीकार्यता को देखते हुए सन् 1986 में दूरदर्शन पर प्रसारित किया जाने लगा, जिसको लाखों दर्शकों ने सराहा।

यद्यपि लेखक ने उपन्यास में अपने युग को प्रस्तुत किया है, तथापि भारत के तद्युगीन परिवेश की ऐसी सटीक प्रस्तुति को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि उन्हें उत्तर प्रदेश जैसे राजनीतिक हवा में सराबोर राज्य में रहते हुए तथा प्रशासनिक सेवा में रहकर विषय ढूँढने कहीं जाना नहीं पड़ा। जिस आज़ादी के लिए देश के नागरिक शतकों से जूझ रहे थे, उसी आजादी की ऐसी हालत देख कर लेखक का मन-मस्तिष्क मथित, व्यथित तथा क्षुब्ध हो उठता है। अपने मन मस्तिष्क को संतुलित करने हेतु उन्होंने शिवपालगंज कस्बे के माध्यम से ग्रामीण स्थिति को ईमानदारी से प्रस्तुत करने की कोशिश की है।

आज़ादी के आकाश को भ्रष्टाचार के बादल से ढकने वाले तंत्र को सबके सामने प्रस्तुत करना आवश्यक ही नहीं अपरिहार्य भी था। जहाँ समस्त विश्व प्रगति की सीढ़ियाँ चढ़ता जा रहा था, वहीँ भारतवासी शासन द्वारा मिलने वाली समस्त सुविधाओं को धता बता रहे थे। जिस स्वतंत्रता के सपनों के लिए स्वतंत्रता सेनानियों ने अपने प्राणों की भी परवाह न की, उसे इस तरह तार-तार करने में देशवासी लगे हुए थे। जिन ग्रामीणों को अनपढ़, निश्छल, भोलेपन, सीधेपन, सरलता के लिए जाना जाता था, उन्हें ही जब लेखक कानून, न्याय, शिक्षा आदि

व्यवस्था को मटियामेट करते देखते हैं, तो इसे सबके सामने लाना उन्होंने अपना कर्तव्य समझा। भारतमाता ग्रामवासिनी कहकर साहित्यकारों ने अपनी स्याही सुखा डाली और जब उन्हीं ग्रामीणों को देश के विकास के लिए लागू होने वाले योजनाओं को तोड़ते देखते हैं तो पाठक भी इससे इनकार नहीं कर पाते हैं कि भारत की ग्राम्य संस्कृति विकृति में आकंठ डूबी हुई है।

लेखक ने अपने उपन्यास को प्रस्तुत करने के लिए उत्तर प्रदेश के शिवपालगंज की पंचायत, गाँव के जूनियर कॉलेज तथा कोआपरेटिव सोसाइटी को चुना हैं। यहाँ शिक्षा, न्याय , प्रशासन और राजनीति सभी एक से बढ़ कर एक भ्रष्टाचार के गढ़ है। प्रशासन के द्वारा गाँवों के विकास के लिए 'गरीबी हटाओ', 'साक्षरता अभियान' जैसे सभी योजनाओं को शिवपालगंज के ग्रामीण अपने निजी स्वार्थ के लिए विफल करने में लगे हुए हैं। गाँव के लोग आधुनिक विकास से कोसों दूर हैं। वैद्यजी जैसे पात्र की मुट्ठी में समस्त विकास की चाबी ऐसे बंद है कि उसे कोई निकाल ही नहीं सकता। वैद्यजी ने कॉलेज प्रबंध समिति, कोआपरेटिव सोसाइटी, ग्राम पंचायत आदि के तार खूब कसकर पकड़े हैं। उनकी राजनीतिक पैंतरेबाजी में धीरे-धीरे गाँव के सारे भ्रष्ट व्यक्ति चुम्बक की तरह खींचे चले जाते हैं। वैद्यजी स्थानीय कॉलेज प्रबंधक हैं, किंतु राजनीतिक षड्यंत्रों के सूत्रधार हैं। वैद्यजी का छोटा पुत्र रूप्पन दसवीं कक्षा में कई बार फेल होकर राजनीति के क्षेत्र में अपने पिता के समान सर्वोच्च शिखर पर है। हमारे राजनीतिक रसूख वालों के लिए शिक्षा की कोई अनिवार्यता नहीं है, इस बात को लेखक ने रूप्पन के द्वारा बताने की कोशिश की है। रूप्पन शिक्षा के क्षेत्र में विफल होकर भी छात्र नेता बनकर शिक्षितों को नचाता है। रूप्पन की ग्रामीण क्षेत्र में राजनीतिक समझदारी के लिए गाँव वाले उसका सम्मान करते हैं। उपन्यास में तटस्थ पात्र की भूमिका में वैद्यजी के बड़े सुपुत्र बद्री अग्रवाल हैं। लेखक बद्री जैसे तटस्थ पात्र के द्वारा ये बताने की चेष्टा करते हैं कि आत्मकेंद्रित व्यक्ति से समाज के विकास अथवा पतन पर कोई असर नहीं पड़ता है।

श्रीलाल शुक्ल अपने व्यंग्य को सशक्त अभिव्यक्ति देने के लिए रंगनाथ जैसे शिक्षित पात्र को चुनते हैं। क्योंकि हमारी शैक्षिक व्यर्थता का दिग्दर्शन रंगनाथ को देखकर हो जाता है। श्रीलाल शुक्ल एक शिक्षित, जागरूक पात्र चुनते हैं, जो रंगनाथ के रूप में पाठक के समक्ष आता है। रंगनाथ उच्च शिक्षित होकर भी गाँव वालों के मध्य निरीह, विवश, कुंठित तथा असहाय है। रंगनाथ के चरित्र को देखकर पाठक आधुनिक शिक्षा व्यवस्था की व्यर्थता को समझ जाते हैं। रंगनाथ गाँव के सांस्कृतिक समारोह में ईश्वर की विशेष मूर्ति को सिपाही कहता है, तो गाँव वालों के समक्ष उपहास का पात्र बनता है। सामाजिक विज्ञान विषय से स्नातकोत्तर करने के बाद भी वह सामाजिक, सांस्कृतिक ज्ञान से शून्य होता है। रंगनाथ शिक्षित बेरोजगार है, उसे नौकरी नहीं मिलती है तो शोध कार्य करने लगता है, जिसे वह स्वयं घास खोदने के बराबर मानता है। शिवपालगंज के कुत्सित भ्रष्टाचार से कुंठित होकर वापस शहर की ओर भाग जाता है।

लेखक ने ग्रामीण राजनीति में छोटा पहलवान जैसे पात्र को भी स्थान दिया है। ऐसे पात्र के माध्यम से ही तो राजनीतिक गुंडों के गुंडागर्दी से आम जनता को भय के शिकंजे में रखा जा सकता है। वैद्यजी की सभी राजनीतिक बैठकों में उसकी अनिवार्य सहभागिता होती है।

राजनीति में भय का पाखंड न हो तो जनता के मत को भला कैसे अपने पक्ष में किया जा सकता है। लेखक ने प्रिंसिपल साहिब के चरित्र में कॉलेज के कर्मचारियों से मिलकर अन्य कर्मचारियों के साथ षड्यंत्र करते हुए चित्रित किया है। हमारे शिक्षण संस्थाओं के स्तर को गिराने में ऐसे ही लोग उत्तरदायी होते हैं। लेखक ने प्राचार्य के माध्यम से हमारी शैक्षिक विफलता को बखूबी बताया है। राजनीति बिना गुंडों के आगे बढ़े, ये संभव ही नहीं है। जोगनाथ का चरित्र नशेड़ी, गंजेड़ी तथा उस पर गाँव की कृषि व्यवस्था की डोर भी लेखक ने उसके हाथों देकर कथानक को यथार्थ के धरातल पर उकेरा है। ऐसे नशेड़ियों के सुझाव के आगे गाँव वालों को वैज्ञानिकों के कृषि सुझाव भी व्यर्थ प्रतीत होते हैं। राजनीति में चमचों के अनूठे योगदान से सभी परिचित हैं। यह भूमिका सनिचर निभाता है। इन दीमकों के कारण ही भारतीय लोकतंत्र आज तक सही गति नहीं पकड़ सकी है। सनीचर, जिसका नाम मंगलदास है, वैद्यजी के प्रयत्नों के द्वारा ग्रामप्रधान बन जाता है। किंतु वह वैद्यजी का पिछलग्गू ही होता है, परदे के पीछे से ग्रामप्रधानी तो वैद्यजी ही कर रहे थे। आज भी ग्रामप्रधानी के लिए जो उम्मीदवार चुने जाते हैं, वे अपने पद के अधिकार और कर्तव्यों से प्रायः अनभिज्ञ होते हैं। लेखक को एक ऐसा भी पात्र गढ़ना था, जो आम जनता की बेचारगी को व्यक्त कर सके। इसके लिए उन्होंने लंगड़ पात्र को गढ़ा है।

इस प्रकार लेखक ने स्वातंत्र्योत्तर भारत की निरीह जनता के जीवन की कडुवाहट को 'रागदरबारी' उपन्यास में व्यंग्य के माध्यम से प्रस्तुत किया है। जिस स्वराज के लिए इतने बलिदान हमारे स्वतंत्रता सेनानियों ने दिए, उसे इस भ्रष्ट रूप में पाकर भारतमाता भी कराह उठी। यह उपन्यास पचास साल बीतने के बाद भी बिलकुल ताज़ा है, क्योंकि लेखक के समय की समस्या सुलझी नहीं है। इस रचना की स्वर्ण जयंती मना कर पाठक रुके नहीं है। क्योंकि हीरक जयंती तक पहुँच कर भी शायद ही यह रचना पुरानी पड़े। इसकी प्रासंगिकता का बने रहना हमारी व्यवस्था के लिए शर्म तथा साहित्यिक कृति के रूप में गर्व की बात है। इसलिए कि व्यवस्था इतने वर्षों के बाद भी बदली नहीं है और साहित्यकार के द्वारा लिखा गया सच मानो सर्वकालिक बन गया है।

बोध प्रश्न

- स्वातंत्र्योत्तर भारत में विकास की क्या स्थिति थी ?
- लेखक ने रंगनाथ पात्र को किस वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में चित्रित किया है ?

16.3.1 व्यंग्य : अर्थ, परिभाषा

व्यंग्य शब्द संस्कृत के 'अज्ज' धातु में 'वि' उपसर्ग एवं 'ण्यत' प्रत्यय लगाने से बना है। इसका शाब्दिक अर्थ ताना कसना है, जबकि साहित्यिक क्षेत्र में इसका अर्थ विसंगतियों, विडम्बनाओं पर साहित्यकार की विनोदपूर्ण प्रस्तुति से लगाया जाता है। अव्यवस्था पर सीधी चोट करने से जो असर नहीं होता वह व्यंग्यात्मक शैली से अवश्य होता है। कबीर की सीधी शैली को अपनाने के बजाय साहित्यकार व्यंजना शैली को अधिक प्राथमिकता देते हैं। समाज की अव्यवस्थाओं को देखकर जब साहित्यकार का मन-मस्तिष्क व्यथित हो जाता है, तो वह इन

सारी अव्यवस्थाओं का प्रतिकार व्यंग्य के माध्यम से करता है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने व्यंग्य को इस प्रकार से परिभाषित किया है -

'व्यंग्य वह है, जहाँ अधरोष्ठों में हँस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठा हो और फिर भी कहने वाले को जवाब देना अपने को और भी उपहासास्पद बनाना हो जाता है।'

हिंदी के प्रसिद्ध व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई के शब्दों में - 'व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार करता है, जीवन की आलोचना करता है, विसंगतियों, मिथ्याचारों और पाखंडों का पर्दाफाश करता है।'

डॉ. प्रभार माचवे के शब्दों में - 'मेरे लिए व्यंग्य कोई पोज या अनाज या लटका का बौद्धिक व्यायाम नहीं, पर एक आवश्यक अस्त्र है। सफाई करने के लिए किसी को तो हाथ गंदे करने ही होगें, किसी-न-किसी की तो बुराई अपने सर लेनी ही होगी।'

श्रीलाल शुक्ल कहते हैं - 'मैंने व्यंग्य को आधुनिक जीवन और आधुनिक लेखन के एक अभिन्न अस्त्र और एक अनिवार्य शर्त के रूप में पाया है।'

इनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ ब्रिटानिका में व्यंग्य की परिभाषा इन शब्दों में दी गयी है – 'व्यंग्य अपने साहित्यिक रूप में, हास्यास्पद और बेढंगी स्थितियों से उत्पन्न विनोद और अरुचि को सही-सही अभिव्यक्ति देने वाला साहित्य रूप है, बशर्ते कि उसमें हास्य स्पष्ट रूप से दृश्यमान हो और वह कथन साहित्यिकता से परिपूर्ण हो।'

पाश्चात्य विद्वान मेरिडिथ के शब्दों में - 'व्यंग्यकार नैतिकता का ठेकेदार होता है। बहुधा वह समाज की गंदगी की सफाई करने वाला होता है, उसका कार्य सामाजिक विकृतियों की गंदगी को साफ़ करना होता है।'

स्विफ्ट के शब्दों में - 'व्यंग्य एक ऐसा दर्पण है जिसमें झाँकने में अपनी छाया के आलावा और सभी का प्रतिबिंब दिखाई पड़ता है।'

ऑक्सफ़ोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी में व्यंग्यकी परिभाषा इस रूप में है - 'व्यंग्य वह रचना है, जिसमें प्रचलित दोषों अथवा मूर्खताओं का कभी-कभी कुछ अतिरंजना के साथ मजाक उड़ाया जाता है।'

बोध प्रश्न

- व्यंग्य शब्द का धातु रूप क्या है?
- व्यंग्य को दर्पण किसने कहा है?
- व्यंगकार को नैतिकता का ठेकेदार किसने कहा है ?

16.3.2 हिंदी उपन्यास में विशुद्ध व्यंग्य

हिंदी उपन्यासों में विशुद्ध व्यंग्य, विकृतियों को लेकर कई उपन्यासों की रचना हुई है। स्वातंत्र्योत्तर भारत के साहित्यकारों ने सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा आर्थिक आदि

क्षेत्रों की अव्यवस्था को पकड़ने के लिए व्यंग्य विधा को अपनाया। व्यंग्य कहानी, काव्य, नाटक , निबंध तथा उपन्यास आदि सभी क्षेत्रों में बढ़-चढ़ कर प्रयोग किया जा रहा था। शब्दों के तीखे प्रहार से समाज में हर स्तर पर सुधार की प्रक्रिया साहित्यकारों ने आरम्भ कर दिया था। स्वतंत्रता के बाद देश के राजनीतिक, प्रशासनिक, सामाजिक मूल्यों के पतन ने तथा भ्रष्टाचार को लालफीताशाही में लिपटा हुआ देख कर व्यंग्यकारों ने लेखनी पर अपनी पकड़ मजबूत बना ली। उपन्यासों में व्यंग्य दो तरह से सामने आया। एक वे उपन्यास जो व्यंग्य को केंद्र में रखकर लिखे गए और दूसरे वे जिनमें व्यंग्य की कुछ झलकियाँ ही देखने को मिलती हैं। स्वतंत्रता पूर्व के उपन्यासों में व्यंग्य का गौण रूप चित्रित हुआ है, जबकि स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में व्यंग्य का भरपूर प्रयोग हुआ है। सन् 1952 में 'हुजूर' (रांगेय राघव), सन् 1954 में 'सनसनाते सपने' (राधाकृष्ण), 'कढ़ी में कोयला' (पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र), सन् 1961 में 'रानी नागफनी की कहानी', 'तट की खोज' (हरिशंकर परसाई), सन् 1962 में 'कथा सूर्य की नई यात्रा' (हिमांशु श्रीवास्तव), 'चाँदी का जूता' (विन्ध्याचल प्रसाद गुप्त), सन् 1968 में 'रागदरबारी' (श्रीलाल शुक्ल), सन् 1970 में 'एक उलूक कथा' (डॉ. श्यामसुंदर घोष), सन् 1971 में 'एक चूहे की मौत' (बदीउज्जमा), 'जंगलतन्त्रम' (डॉ. श्रवणकुमार गोस्वामी), 'एक मंत्री स्वर्गलोक में' (डॉ. शंकर पुन्ताम्बेकर), 'काली किताब' (आबिद सुरति), सन् 1973 में 'आश्रितों का विद्रोह', (डॉ. नरेंद्र कोहली), 'बिके हुए लोग' (डॉ. सरोजिनी प्रीतम), 'नरकयात्रा', 'बारामासी', 'मरीचिका', 'अलग', 'हम न मरब' (डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी) आदि उपन्यासों का नाम विशुद्ध व्यंग्य के लिए प्रसिद्ध है।

श्रीलाल शुक्ल द्वारा लिखा गया उपन्यास 'रागदरबारी' आद्यंत व्यंग्य से सिक्त है। इसे पाठक कहीं से भी पढ़ कर छोड़े उन्हें उपन्यास-रस के साथ ही व्यंग्य रस भी प्राप्त होगा। क्योंकि इस उपन्यास में कोई कथा क्रम नहीं है। क्योंकि आगे क्या होगा जैसी उत्सुकता इस उपन्यास में नहीं है। छोटी-छोटी कथाओं के माध्यम से लेखक ने रंगनाथ को सूत्रधार की भूमिका में उपन्यास को गति प्रदान की है। रंगनाथ को उच्चशिक्षित व्यक्ति के रूप में चित्रित करते हुए भी लेखक ने व्यवहारिक ज्ञान से शून्य बताया है। क्योंकि एम ए करने के बाद नौकरी न मिलने पर वह शोध कार्य में अपना दाखिला करा कर भी विश्वविद्यालय और ग्रंथालय के महत्त्व को नहीं समझता है। शिवपालगंज में घटने वाली घटनाएँ उपन्यास को घटनाप्रधान उपन्यास की सीमारेखा में रख देती है। इस उपन्यास में पात्र घटनाओं के आगे-पीछे घूमते हैं। घटनाओं के अति विषाक्त रूप को देखते-देखते अंत में रंगनाथ पलायन में ही अपनी भलाई समझता है। समस्त कथानक प्रिंसिपल, खन्ना मास्टर, वैद्य जी आदि की गुटबाजियों में केंद्रित रहता है। छंगामल कॉलेज के प्रिंसिपल को विश्वविद्यालय के वाईस चांसलर से अधिक महत्वपूर्ण पद प्रिंसिपल का लगता था, क्योंकि अकेले वैद्यजी का तलवा चाटने के बाद वे सभी पर रौब जमा सकते थे। जबकि वाईस चांसलर को विश्वविद्यालय के छात्र ही गालिया देकर चले जाते हैं तो वह कुछ भी नहीं कर पाते हैं। माताप्रसाद नेता के माध्यम लेखक ने राजनीति पर जीवंत व्यंग्य कसा है। उपन्यास में वैद्यजी का सेवक मंगल, जो सनीचर के नाम से कथानक में जाना जाता है। लेखक ने सनीचर को ग्रामप्रधान बनवा कर लोकतंत्र के आदर्श को प्रस्तुत नहीं किया है अपितु लोकतंत्र का मजाक बनाने वाले

वैद्यजी जैसे लोगों का चेहरा प्रस्तुत किया है। क्योंकि वे सनीचर की ग्रामप्रधानी पद का दुरुपयोग अपने निजी स्वार्थपूर्ति के लिए खुलकर कर सकते थे। भ्रष्ट व्यवस्था में खन्ना मास्टर को इस्तीफा देना पड़ता है तो रंगनाथ को पलायन करना पड़ता है। उपन्यास का यही व्यंग्य पाठक तक सार्थक बन पड़ता है। लंगड़ पात्र को लेखक ने नायकत्व का आवरण चढ़ा कर प्रस्तुत करने की कोशिश की है किंतु व्यवस्था के कुचक्र के समक्ष वह भी घुटने टेक देता है। लंगड़ जब अपने ही बेटों पर दीवानी का मुकदमा करता है तो लेखक देश की न्यायिक प्रक्रिया के विलंब और घूसखोरी पर व्यंग्य करते हैं। उपन्यास में स्त्री पात्रों का स्वतन्त्र अस्तित्व न होना उत्तर भारत में स्त्रियों का स्थान बताता है। एक बेला है, जिसके प्रेम में बद्रीनाथ पड़े हैं और पंडित राधेलाल की पत्नी, जो बंगाल से भगा कर लायी गयी है। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक पुरुष वर्चस्व समाज तक ही अपनी दृष्टि जमाये हुए हैं। यह भी सोचने की बात है कि उनका ध्यान स्त्रियों, दलितों तथा हिंदू-मुस्लिम जैसे विषयों पर क्यों नहीं गया, जबकि ये सब उस समय के ज्वलंत विषय थे।

लेखक मानते हैं कि जहाँ शहर में समस्याओं का निराकरण संभव है, गाँवों में समाधान के स्थान पर एक और समस्या उठ खड़ी होती है। वे गाँव की समस्याओं को उनकी नियति बनाकर प्रस्तुत करते हैं। परीक्षा में जो मास्टर विद्यार्थियों को नक़ल नहीं करने देते थे, उन्हें परीक्षा के बाद परीक्षार्थी पीट देते थे। नकल करने को वे अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते हैं।

रागदरबारी उपन्यास में स्वतंत्रता के बाद के भारत को लेखक ने चिंता अथवा विद्रोह के न पर व्यंग्य की दृष्टि से देखा है। एक मूल्यहीन, अनैतिक अकर्मण्य तथा बेईमान देश के विकास की गति को समझा जा सकता है। लेखक ने साहित्यिक मर्यादा के लिए भी भाषा पर सभ्यता का मुलम्मा नहीं चढ़ाया है। बल्कि यथातथ्य रूप में भाषिक प्रयोग करते हुए अपने व्यंग्य को तीव्र बनाया है। लेखक का अतियथार्थवादी दृष्टिकोण कई बार पाठक को चुभता भी है। लेखक यद्यपि भारतीय मूल्यों में आस्थावान है, इसलिए ग्रामीणों की अनैतिक तथा भ्रष्टाचारी स्वरूप को देख कर विक्षुब्ध हो उठते हैं। लेखक का व्यंग्यात्मक सृजन कई बार वीभत्सता की सीमा में पहुँच जाता है।

बोध प्रश्न

- सनीचर की ग्रामप्रधानी का दुरुपयोग कौन करता है?
- अव्यवस्था के विरुद्ध लेखक ने कौन सी राह चुनी है?
- लेखक ने भाषा पर किसका मुलम्मा नहीं चढ़ाया है?

16.3.2.1 रागदरबारी में प्रयुक्त राजनीतिक, प्रशासनिक व्यंग्य

शिवपालगंज का राजनीतिक परिवेश वहाँ के पंचायत, कॉलेज प्रबंध समिति, कोआपरेटिव सोसाइटी वैद्यजी की राजनीतिक संस्कृति की शिकार है। सता की राजनीति का विदूषक सनिचर ग्रामसभा का प्रधान बन जाता है। चुनावी दंगल में गाँव वालों की सुरक्षा करने वाली पुलिस निर्दोष ग्रामीणों को पकड़ती है, जिसमें गरीब लंगड़ के न्याय की पुकार हास्यास्पद

बन जाती है। हमारे देश में हर स्तर पर व्याप्त अव्यवस्था लोकतंत्र को मजाक बना देता है। लेखक स्वयं दरबारी अर्थात प्रशासनिक अधिकारी होते हुए भी दरबार की सारी कमियों को उजागर करते हैं। व्यवस्था की धज्जियाँ उड़ाकर भी श्रीलाल शुक्ल जब वी. पी. सिंह उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री थे, उनके सचिव थे। स्वयं पर व्यंग्य करना सरल कार्य नहीं है। ऐसा साहस श्रीलाल शुक्ल जैसे लेखक ने किया। लेखक ने रागदरबारी नामकरण के द्वारा अपने मंतव्य को स्पष्ट कर दिया है। दरबारी विसंगति पर मार्मिक कटाक्ष करते हुए लेखक ने ग्रामीण समाज के सीधे-सरल लोगों के काइयां रूप को चित्रित किया है। उन्होंने ग्रामीणों के प्रति सबकी सोच में परिवर्तन लाया, जो सुखद तो नहीं किंतु वेदनात्मक यथार्थ अवश्य है।

बोध प्रश्न

- श्रीलाल शुक्ल किस मुख्यमंत्री के सचिव थे?
- चुनावी दंगल में पुलिस किसे पकड़ती है?

16.3.2.2 रागदरबारी में प्रयुक्त सामाजिक, धार्मिक व्यंग्य

देश की स्वतंत्रता के बाद भारत के ग्रामीण संस्कृति प्रधान वातावरण में विकास दूर की कौड़ी सिद्ध हो रही थी। गांधी जी के स्वराज के नारों का गाँवों में दूर-दूर तक नाम न था। जीवन की सभी मूलभूत सुविधा गाँवों में उपलब्ध कराने के नारों का कोई अस्तित्व नहीं दिखाई दे रहा था। शिवपालगंज जैसे कस्बेनुमा गाँव में प्रगति, विकास का कोई नाम न था। रंगनाथ अपने मामा के गाँव शिवपालगंज में स्वास्थ लाभ के लिए आता है, लेकिन उसे गाँव का हर व्यक्ति मानसिक रूप से अस्वस्थ दिखाई देता है। 'रागदरबारी' उपन्यास लिखे जाने के पचास सालों के बाद भी मोहनलालगंज, जो कि लखनऊ के पास है, यहाँ शिवपालगंज को आज भी जीवित देखा जा सकता है। ग्रामीण जीवन की मूल्यहीनता को लेखक ने यथारूप चित्रित किया है, जो ग्रामीणों के स्वार्थ और असामाजिक कृत्यों का जीवंत दस्तावेज है। जीवन धर्म के कुत्सित रूप को लेखक ने उपन्यास में प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में छोटे पहलवान का अपने पिता से हाथापाई हो अथवा अपशब्दों का व्यापार, दोनों ही पाठकों के मन-मष्तिष्क को ये सोचने के लिए विवश करता है कि यदि जीवन मूल्य, नैतिकता तथा संस्कृति की जड़ें गाँवों में ही निर्मूल हो रही हैं, तो भारत के आध्यात्मिकता का गुणगान विश्व फलक पर भला क्यों कर किया जा सकेगा? रंगनाथ शिवपालगंज में स्वर्गिक आनंद की अभिलाषा लिए हुए आता है, किंतु वह हर स्तर पर निराशा से दो-चार होता है। उच्च शिक्षित होकर भी वह गलत को गलत कहने की हिम्मत नहीं जुटा पाता है। क्योंकि उसे पता है कि जहाँ प्रत्येक व्यक्ति विसंगति से संगती बिठा चुका हो, वहाँ उसकी आवाज़ नक्कारखाने में तूती की आवाज़ बनकर दब जाएगी। ऐसे में वह अधिक प्रयत्न भी नहीं करता व्यवस्था के विरुद्ध जाने का, जब तक सामना कर सकता है, करता है और जब असहनीय हो जाता है तो शहर की ओर पलायन करता है।

बोध प्रश्न

- रंगनाथ शिवपालगंज क्यों आता है?

- लेखक ने शिवपालगंज नामक गाँव को किस गाँव को आधार बनाकर उपन्यास में प्रस्तुत किया है?

16.3.2.3 रागदरबारी में प्रयुक्त शिक्षा जगत पर व्यंग्य

भारतीय शिक्षा प्रणाली की कमियों पर लेखक ने जबरदस्त व्यंग्य किया है। भारतीय शिक्षा प्रणाली में अंग्रेजी को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता है। इस विषय को लेकर भी लेखक ने व्यंग्य किया है - 'हृदय परिवर्तन के लिए रौब की जरूरत होती है और रौब के लिए अंग्रेजी की।' शिवपालगंज गाँव के कॉलेज में शिक्षा को छोड़कर सारे कार्य होते हैं। विद्यार्थी शिक्षा से अधिक गुटबाजी, राजनीति में भागीदारी लेते हैं। रंगनाथ शहरी परिवेश में शिक्षा प्राप्त व्यक्ति होकर भी जब उसे सामाजिक विषय में स्नातकोत्तर करने के बाद नौकरी नहीं मिलती है तो शोधकार्य में लग जाता है। विश्वविद्यालयों में शोधकार्य की स्थिति की दयनीयता को देखते हुए लेखक कहते हैं - 'कहा तो घास खोद रहा हूँ अंग्रेजी में इसे ही रिसर्च कहते हैं। रंगनाथ के द्वारा लेखक के शैक्षिक विचार को हम उपन्यास में देखते हैं। शैक्षिक क्षेत्र में जो ईमानदारी के साथ आगे बढ़ते हुए अपना कार्य करता है, उसे खन्ना की तरह षड्यंत्रों का शिकार होना पड़ता है। लेखक ने शिक्षा जगत में व्याप्त भ्रष्टाचार के विविध रंगों पर अपनी करारी दृष्टि डाली है। क्योंकि छंगामल इंटर कॉलेज में प्राचार्य से लेकर दूसरे शिक्षक तक अयोग्य तथा भ्रष्टाचारी हैं । खन्ना मास्टर जैसे योग्य और ईमानदार शिक्षकों के लिए शिक्षा व्यवस्था में कोई स्थान नहीं मिलता है, यहाँ तक कि ऐसे शिक्षको से गुंडागर्दी के बल पर वैद्यजी जैसे शातिर व्यक्ति इस्तीफा दिलवाने में समर्थ हो जाते हैं।

बोध प्रश्न

- लेखक ने रौब के लिए क्या आवश्यक माना है?
- कॉलेज में षड्यंतों का शिकार कौन होता है?

16.3.3 व्यंग्य में विकृति की पहचान और दृष्टि परिवर्तन

व्यंग्य में वैयक्तिकता का सर्वथा अभाव होता है। यद्यपि व्यंग्यकार एक सामाजिक प्राणी होता है और उसका सामाजिक सरोकार ही व्यंग्य का विषय होता है। मानव समाज के प्रत्येक क्षेत्र को, यथा - राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा साहित्यिक आदि सभी क्षेत्रों में व्याप्त विसंगतियों तथा विकृतियों को सामने रखकर उसे दूर करने का प्रयत्न व्यंग्यकार करता है। व्यंग्य में व्यक्तिगत सुख-दुःख भले ही चित्रित हो, किंतु ऐसे क्षण में विकृति नहीं होती है। व्यंग्य को निहायत निर्वैयक्तिक रूप में ही प्रस्तुत करना चाहिए। व्यंग्य सकारात्मक समाधान की इच्छा से लिखा जाता है, किंतु प्रथम दृष्टया नकारात्मक ही प्रतीत होता है। व्यंग्यकार की बौध्दिक प्रखरता व्यंग्य को मात्र हास्य रचना से अधिक गंभीर साहित्य बनाता है। इसके माध्यम से पाठक की चेतना झंकृत होती है। एक श्रेष्ठ व्यंग्य में संवेदनशीलता का प्राचुर्य होता है। समाज में व्याप्त असंगत कार्यों के विरुद्ध इसे अस्त्र भी तरह व्यंग्यकार प्रयुक्त करता है। व्यंग्य एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया होती है, जो मानव की आत्मा को जगाकर सुधार की ओर अग्रसर करता

है। यह व्यक्तिगत रोष से आरम्भ होकर उदात्त रूप धारण करते हुए शिष्ट क्रोध का रूप धारण करता है। व्यंग्यकार नैतिकता की ओर समाज को बढ़ाना चाहता है। यदि हम व्यंग्य को समाज के रोगों की शल्य क्रिया कहें तो गलत न होगा। इस प्रकार व्यंग्य अनुभूति की गहन पीड़ा से उत्पन्न होता है। व्यंग्यकार जनसामान्य से जितना अधिक जुड़ता है उसके व्यंग्य का पैनापन उतना ही अधिक होता है। 'रागदरबारी' लंगड़ की तरफ खड़ा होकर भी उसे न्याय नहीं दिला पाता, बल्कि सबको झिंझोड़कर जागरूक बनाता है। व्यंग्यकार की बेचैनी व्यंग्य को सटीक बनाती है। व्यंग्य को सामान्य हास्य मात्र नहीं माना जा सकता। 'रागदरबारी' में समाज और व्यवस्था पर व्यंग्य का यही रूप दृष्टिगत हुआ है। गाँव वालों का आपसी वार्तालाप पाठक को गुदगुदाते हुए आकस्मिक रूप से गंभीर बना देता है।

बोध प्रश्न

- अनुभूति की गहन पीड़ा से क्या उत्पन्न होता है?
- व्यंग्य को गंभीर साहित्य कौन बनाता है?

16.4 पाठ सार

'रागदरबारी' श्रीलाल शुक्ल की प्रसिद्ध व्यंग्य रचना है। इस कृति के विविधमुखी धरातल को देखते हुए इसे साहित्य अकादमी व्दारा पुरस्कृत किया गया है। स्वातंत्र्योत्तर गद्य विधाओं में व्यंग्य का अत्यधिक विकास हुआ। व्यंग्य को लेकर श्रीलाल शुक्ल ने भारतीय कस्बाई जीवन की मूल्यहीनता को दिखाया है। जिस आज़ादी के लिए देश के नागरिक शतकों से जूझ रहे थे, उसी आजादी की ऐसी हालत देख कर लेखक का मन मस्तिष्क व्यथित हो उठता है। अपने मन मस्तिष्क को संतुलित करने हेतु उन्होंने शिवपालगंज कस्बे के माध्यम से ग्रामीण स्थिति को ईमानदारी से प्रस्तुत करने की कोशिश की है। जिन ग्रामीणों को अनपढ़, निश्छल, भोलेपन, सीधेपन, सरलता के लिए जाना जाता था, उन्हें ही जब लेखक कानून, न्याय, शिक्षा आदि की धज्जियाँ उड़ाते हुए देखते हैं तो ऐसी व्यवस्था पर चोट करना तथा सुधी जनतंत्र को जागरूक बनाना आवश्यक हो जाता है। लेखक ने अपने उपन्यास को प्रस्तुत करने के लिए उत्तर प्रदेश के शिवपालगंज की पंचायत, गाँव के जूनियर कॉलेज तथा कोआपरेटिव सोसाइटी को चुना हैं। यहाँ शिक्षा, न्याय, प्रशासन और राजनीति सभी एक से बढ़ कर एक भ्रष्टाचार के गढ़ है। प्रशासन के द्वारा गाँवों के विकास के लिए 'गरीबी हटाओ', 'साक्षरता अभियान' जैसे सभी योजनाओं को शिवपालगंज के ग्रामीण अपने निजी स्वार्थ के लिए विफल करने में लगे हुए हैं। गाँव के लोग आधुनिक विकास से कोसों दूर हैं । वैद्यजी अकेले कॉलेज प्रबंध समिति, कोआपरेटिव सोसाइटी, ग्राम पंचायत आदि सब जगह की व्यवस्था को ध्वस्त करने में पूर्ण सक्षम हैं। उनकी राजनीतिक पैतरेबाजी में धीरे-धीरे गाँव के सारे भ्रष्ट व्यक्ति चुम्बक की तरह खींचे चले जाते हैं। वैद्यजी स्थानीय कॉलेज प्रबंधक हैं, किंतु राजनीतिक षड्यंत्रों के सूत्रधार हैं। शिवपालगंज गाँव के कॉलेज में शिक्षा की व्यवस्था को चकनाचूर होते दिखाया गया है। विद्यार्थी शिक्षा से अधिक गुटबाजी, राजनीति में भागीदारी लेते हैं। शिवपालगंज जैसे कस्बेनुमा गाँव में प्रगति, विकास

का कोई नाम न था। ग्रामीण जीवन की मूल्यहीनता को लेखक ने यथारूप में चित्रित किया है, जो ग्रामीणों के स्वार्थ और असामाजिक कृत्यों का जीवंत दस्तावेज है। हमारे देश में हर स्तर पर व्याप्त अव्यवस्था, लोकतंत्र को मजाक बना देता है। लेखक स्वयं दरबारी अर्थात प्रशासनिक अधिकारी होते हुए भी दरबार की सारी कमियों को उजागर करते हैं। शासन में कार्य करते हुए शासनतंत्र की विसंगतियों को अनावृत करने के लिए अत्यधिक साहस की आवश्यकता होती है। लेखक में यह साहस इसलिए आ पाता है क्योंकि उन्होंने स्वयं इन परिस्थितियों में रहकर अव्यवस्था का मंथन किया था। वे जानते थे कि यदि विसंगति एक स्थान पर हो तो उसे सुधारा जा सकता है, लेकिन कदम-कदम पर यही विसंगति मिले, तो उसमें या तो वैद्यजी बन सकेंगे या फिर रंगनाथ बन कर भागना ही निदान माना जायेगा। क्योंकि लेखक निर्णय पाठकों के हाथ छोड़कर स्वयं निश्चिन्त जाते हैं।

16.5 पाठ की उपलब्धियाँ

विवेच्य व्यंग्यात्मक पाठ की निम्नलिखित उपलब्धियाँ हैं -

1. 'रागदरबारी' उपन्यास के व्यंग्यात्मक पक्ष को बताया गया है।
2. व्यंग्य के अर्थ और परिभाषा को विस्तृत रूप से बताया गया है।
3. हिंदी उपन्यास में विशुद्ध व्यंग्ययुक्त उपन्यासों का नामोल्लेख किया गया है।
4. 'रागदरबारी' में प्रयुक्त विविध क्षेत्रों के व्यंग्य से अवगत हुए।
5. व्यंग्य में विकृति को बताते हुए दृष्टि परिवर्तन की जानकारी प्राप्त हुई।

16.6 शब्द संपदा

1. अनभिज्ञ = अनजान
2. अनावृत = उद्घाटन
3. अपरिहार्य = अनिवार्य
4. अवलोकन = ध्यानपूर्वक देखना
5. उपहास = मज़ाक
6. कुंठित = हताश
7. कुत्सित = निन्दित
8. क्षुब्ध = व्याकुल
9. झंकृत = धीरे-धीरे होने वाली आवाज़
10. तटस्थ = जो किसी के पक्ष में न हो
11. धज्जियाँ = कटु आलोचना
12. धता = जो दूर हो गया हो

13. निरीह = बेचारा
14. पिछलग्गू = अनुगामी
15. प्रतिकार = विरोध
16. विदूषक = मसखरा
17. विनिमय = अदल-बदल
18. षड्यंत्र = साज़िश
19. सराबोर = भीगा हुआ

6.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 500 शब्दों में लिखिए।

1. 'रागदरबारी' उपन्यास में प्रयुक्त व्यंग्य पर प्रकाश डालिए।
2. व्यंग्य का अर्थ बताते हुए परिभाषित कीजिए।
3. हिंदी उपन्यासों में व्यंग्य का क्या स्थान है?
4. व्यंग्य में विकृति की पहचान किस प्रकार किया जा सकता है?

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 200 शब्दों में लिखिए।

1. भारतीय ग्रामीण परिवेश में विकास की स्थिति को बताइए।
2. 'रागदरबारी' में प्रयुक्त शैक्षिक क्षेत्र के व्यंग्य को निरूपित कीजिए।
3. श्रीलाल शुक्ल की व्यंग्य दृष्टि का चित्रण कीजिए।
4. हास्य और व्यंग्य को किस प्रकार अलग-अलग बताया जा सकता है?

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए।

1. रांगेय राघव की व्यंग्य कृति 'हुजूर' का प्रकाशन वर्ष क्या है? ( )

    (अ) सन् 1953 में (आ) सन् 1954 में (इ) सन् 1952 में

2. डॉ. श्यामसुंदर घोष की व्यंग्य रचना 'एक उलूक कथा' का प्रकाशन वर्ष है - ( )

(अ) सन् 1972 में (आ) सन् 1975 में (इ) सन् 1970 में

3. किस कृति पर साहित्य अकादमी पुरस्कार श्रीलाल शुक्ल को दिया गया? ( )

(अ) सन् 1966 में (आ) सन् 1969 में (इ) सन् 1967 में

4. 'रानी नागफनी की कहानी' का प्रकाशन वर्ष बताइए? ( )

(अ) सन् 1961 में (आ) सन् 1971 में (इ) सन् 1974 में

II रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. ....ने व्यंग्य को आधुनिक जीवन का अभिन्न अस्त्र माना है।
2. दूरदर्शन पर 'रागदरबारी' धारावाहिक रूप में सन्...............में प्रसारित हुआ।
3. 'रागदरबारी' में छोटा पहलवान स्थानीय ....है।
4. बद्री अग्रवाल वैद्यजी का ....है।
5. सनीचर का नाम............................ है।

III सुमेल कीजिए।

1. काली किताब'	अ) डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी
2. 'हम न मरब'	आ) मंगल
3. 'कढ़ी में कोयला'	इ) आबिद सुरति
4. 'चाँदी का जूता'	ई) पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र
5. सनीचर	उ) विन्ध्याचल प्रसाद गुप्त

16.8 पठनीय पुस्तकें

1. व्यंग्यात्मक उपन्यास तथा रागदरबारी, नन्दलाल कल्ला.
2. रागदरबारी कृति से साक्षात्कार, चंद्रप्रकाश मिश्र.
3. हिंदी व्यंग्य विधा : शास्त्र और इतिहास, बापूराव घोडू देसाई.
4. हिंदी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय.
5. हिंदी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय.
6. राजनितिक समाजशास्त्र की रूपरेखा, शशि शर्मा.